

धर्म प्रवाह

धर्म प्रवाह

AmMmæm© pdeXgmJa

ladyu
cz-T/sfrnhvLEknh

izk'd

पर्वराज पर्यूषण एवं दशलक्षण धर्म माला

“पर्व जीवन निर्माण के लिए आते हैं”

धर्मः कल्पतरो मूलं द्वारं मोक्ष पुरस्य च।
संसाराब्धो महा पोतो, गुणानां स्थान मुत्तमं॥

धर्म कल्पवृक्ष की जड़ है। मोक्ष नगर का द्वार है, संसार सागर पार करने के लिए जहाज है और अनेक गुणों का स्थान है।

आज की दुनियाँ में पर्वों को खाने, पीने और खेलने से जोड़ दिया है जैसे-रक्षाबन्धन को लडू खाए जाते हैं, राखी बाँती जाती है, होली को गुड़िया खाकर रंग डाला जाता है, दीपावली को नटाखे चलाए जाते हैं, दीपक जलाए जाते हैं और लडू चढ़ाए जाते हैं। लोगों के मन में बड़ी प्रसक्तता होती है।

जिस प्रकार दीपावली आती है तो प्रत्येक घर में उसके आने की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है, उसी प्रकार ये पर्यूषण पर्व हमारा आध्यात्मिक पर्व है, जिसमें व्यक्ति ब्रह्मवाक्य अपनी सात्वता प्रारम्भ करता है।

पर्व प्राणी को पावन बनाने एवं जीवन निर्माण के लिए आते हैं। जीवन का निर्माण तब होता है, जब व्यक्ति समझ ले कि जीवन क्या होता है? पर्व आते रहे, हम मनाते रहे लेकिन पर्व की आधारभूत ब्रह्मलक्षण क्रिया को जीवन में नहीं उतारा इसीलिए पर्व निकलते रहे और हम जहाँ के तहाँ रह गये अर्थात् भव सागर में जन्म जरा मृत्यु की 84 लाख योनियों में परिगमन कर रहे हैं। पर जिसने इन पर्वों को आत्मसात् किया वह पतित से पावन हो गया क्योंकि अष्टाह्निका और पर्यूषण पर्व का सम्बन्ध खाने से नहीं बल्कि खाना और खेलना त्यागने से है ये भोग नहीं योग के पर्व

हैं इसलिए महान् कहे जाते हैं।

पर्यूषण पर्व का ही दूसरा नाम है, दशलक्षण पर्व। जिन हेतुओं से हम अपनी आत्मा को जान पहचान सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, ये धर्म प्राप्ति के 10 सात्वान हैं।

जैन सि)ान्त में धर्म का स्वरूप-

वत्थु सहावो धम्मो खमादि भावो दश विहो धम्मो।
रयणयत्तयं च धम्मो जीवाणां रक्खणं धम्मो॥

धर्म नाम स्वभाव का है। जैसे-अग्नि का स्वभाव उष्णता है, जल का स्वभाव शीतलता है उसी प्रकार जीव का स्वभाव आनन्द है, ऐन्द्रिक सुख नहीं। अतः वह अतीन्द्रिय आनन्द ही जीव का धर्म है अथवा कारण में कार्य का उपचार करके जिस अनुष्ठान विशेष से उस आनन्द की प्राप्ति हो उसे ही तार्म कहते हैं। वह दो प्रकार का है-एक बाह्य और दूसरा अन्तरंग। बाह्य अनुष्ठान तो पूजा, दान, शील, संयम व्रत आदि हैं और अन्तरंग अनुष्ठान साम्यता या वीतराग भाव में स्थिति की अधिकाधिक साधना करना है। यहाँ बाह्य अनुष्ठान को व्यवहार धर्म समझें और अन्तरंग को निश्चय धर्म। निश्चय धर्म साक्षात् समता स्वरूप ब्रह्मपरमानन्दरूपक होने के कारण वास्तविक है और व्यवहार धर्म उसका कारण होने से औपचारिक। पर व्यवहार धर्म सम्यक्त्व सहित भी होता है और उससे रहित भी यहाँ जो सम्यक्त्व सहित है उसकी विवक्षा है। कहा भी है-“दंसणमूलो धम्मो” आत्मा रत्नत्रय स्वरूप है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारिण इनको रत्नत्रय कहते हैं। जिनेन्द्र प्रभु द्वारा उपदिष्ट सप्ततत्त्वों पर पूर्ण श्र)ा व रुचि होना व्यवहार सम्यक्दर्शन है और पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्मतत्त्वों में ब्रह्मत्वानतः रुचि-श्र)ा-प्रतीति का होना निश्चय

सम्यक्दर्शन है। पुनः सम्यक्दर्शन पूर्वक जो आचरण है उसे सम्यक्चारित्र्य कहते हैं। प्रत्येक के व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा दो-दो भेद हैं। पहला व्यवहार धर्म, निश्चय धर्म रूप साम्यता का सात्ताक है। इसलिए पहला धर्म बाह्य से भीतर की ओर जाता है जबकि दूसरा भीतर से बाहर की ओर निकलता है। आत्मशक्तियों को उद्घाटित करता है, प्रकट करता है। “दंसणमूलो धम्मो” यहाँ सम्यक्दर्शन को धर्म का मूल इसलिए कहा गया है कि सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान व चारित्र्य सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य रूप नहीं होते हैं तथा वे धर्म संज्ञा को प्राप्त नहीं होते हैं। कहा भी है-

नापिधर्मः क्रियामात्रं मिथ्यादृष्टेरिहार्थतः।

नित्यरागादि सद्भावात् प्रत्युताधर्म एव सः॥

मिथ्यादृष्टि के सदा रागादि भावों का सद्भाव रहने से केवल क्रिया रूप धर्म का पाया जाना भी वास्तव में धर्म नहीं हो सकता, किन्तु वह अधर्म ही है।

आ० श्री कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार में लिखते हैं-

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्विओ।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हि समो॥

इस गाथा में “चारित्तं खलु धम्मो” चारित्र्य ही धर्म है ऐसा कहा है किन्तु पूर्व कथन से यहाँ कोई विरोध नहीं आता है क्योंकि मोह और क्षोभ से रहित परिणाम और साम्यभाव की भी विवक्षा है। सम्यक्दर्शन पूर्वक होने वाले चारित्र्य को ही यहाँ धर्म कहा गया है।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार में धर्म का स्वरूप इस प्रकार बताया है- सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्म धर्मेवरा विदुः

गणत्तारादि आचार्य सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान वा सम्यक्चारित्र्य को धर्म कहते हैं और कहा भी है-

देशयामि समीचीनं धर्मकर्म निबर्हणम्।

संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमेसुखे॥”

जो प्राणियों को संसार के दुःख से उठाकर उत्तम सुख में स्थापित करे उसे त्तार्म कहते हैं वह धर्म कर्मों का विनाशक तथा समीचीन है।

सर्वार्थ सिद्धि में आचार्य लिखते हैं-

इष्टस्थाने धत्ते इति धर्मः-जो इष्ट स्थानं ब्रह्मस्वर्ग मोक्षत्रय में स्थापित करे उसे धर्म कहते हैं।

धर्म के भेद-“उत्तमखमादिदसविहो धम्मो” उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य के भेद से धर्म 10 भेद वाला है। और भी-

सम्पूर्णदेश भेदाभ्यां स च धर्मो द्विधा भवेत् ब्रह्मं. विंशतिकात्र

सम्पूर्ण और एक देश के भेद से धर्म दो प्रकार वाला है अर्थात् मुनिधर्म और श्रावकधर्म के भेद से धर्म के दो भेद होते हैं।

पूर्व कथन का तात्पर्य-धर्म शब्द से निश्चय से जीव के शु) परिणाम ग्रहण करने चाहिए। उसमें ही नय-विभाग रूप से, वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत सर्वधर्म अन्तर्भूत हो जाते हैं। वह ऐसे कि--1 अहिंसा लक्षण धर्म है जो जीव के शु) भाव के बिना सम्भव नहीं है। मिथ्यात्वादि ही अशु)ता के बोधक हैं और रत्नत्रय रूप परिणाम विशु)ता के सूचक हैं अस्तु रत्नत्रय लक्षण वाला धर्म भी वैसा ही है। राग द्वेष मोह के अभावरूप लक्षण वाला धर्म भी जीव का शु) स्वभाव बताता है और वस्तु स्वभाव लक्षण वाला धर्म भी

जीव की अपेक्षा रखता है। सागार अनागार लक्षण वाला धर्म भी वैसा ही है।

धर्म एवं पर्व-भारतदेश धर्मों का बगीचा है। यह भारतभूमि विविध धर्मों की जननी है। यह देश धार्मिक अनुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है। उन सभी धर्मों का अपना-अपना पर्वकाल निश्चित है। उन तिथियों में वे विशेष रूप से अपने इष्टदेव की आराधना पूजा आदि करते हैं। इन दिनों में वे अपने-अपने घरों को खूब सजाते हैं, शोभा के लिए लाइट लगाते हैं, नये-नये कपड़ें पहनते हैं, पूजा पकवान बनाते हैं, गुलझड़ी पटाखे छुड़ाते हैं। इत्यादि इन्द्रिय पोषण की क्रियाओं के द्वारा ही उनमें अनेक धर्मावलम्बी अपने पर्व का समापन कर देते हैं। किसी-किसी पर्व में तो निरीह पशुओं की बलियाँ चढ़ाकर देवी-देवताओं की पूजा का दम्भ भरा जाता है। पर जो दया, करुणा और मानवता का विधातक है, कषायों और विकारों को जागृत करने वाला है वह पर्व कभी हमारे लिए उपादेय नहीं बन सकता है।

हमें इस बात का विशेष गौरव है कि हमारे दिगम्बर जैन धर्म के जितने भी पर्व हैं, वे सभी जीवन को त्याग, वैराग्य और संयम की ओर मोड़ने वाले हैं, अहिंसा दया और आत्मगुणों के पोषक हैं। अष्टाह्निका पर्व, षोडशकारण पर्व, दशलक्षण पर्व, दीपावली, दशहरा आदि सभी पर्व प्रहरी की भाँति हमारा आह्वान करते हैं कि जागो, जागो, गहरी मोह निद्रा को छोड़ो। ये पर्व आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण और आत्म विकास के लिये हमें सावधान करते हैं चौराहे में लगे प्रकाश स्तम्भ के समान ये हमको खतरों और संकटों से बचाने वाले हैं और पथिकों को मार्ग दर्शाने वाले हैं। यथा-दशलक्षण पर्व में हमें अपने निज गुण क्षमादि की परख होती है। अभी पर्यूषण पर्व-दशलक्षण पर्व चल रहा है इसलिए इसकी मुख्यता से यहाँ धर्म का व्याख्यान करना उचित है।

पर्यूषण पर्व का स्वरूप एवं महत्व-

पर्यूषण पर्व जैन धर्म का त्रैकालिक शाश्वत पर्व है। पर्व दो प्रकार के होते हैं। 1. त्रैकालिक 2. सामयिक अथवा तात्कालिक। तात्कालिक पर्व भी दो प्रकार के होते हैं, 1. व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित 2. घटना विशेष से सम्बन्धित। यथा-दीपावली, महावीर जयन्ती, दशहरा ये व्यक्ति से सम्बन्धित पर्व हैं क्योंकि दीपावली और महावीर जयन्ती क्रमशः महाप्रभु के निर्वाण और जन्म से सम्बन्धित हैं। दशहरा भी पुरुषोत्तम राम के लंका विजय प्राप्ति से सम्बन्धित है। घटना विशेष से सम्बन्धित पर्वों में रक्षाबन्धन, अक्षय तृतीया, होली आदि पर्व हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित आज के राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता दिवस गणतन्त्र दिवस आदि पर्व हैं।

त्रैकालिक अर्थात् शाश्वत पर्व न तो किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होते हैं और न घटना विशेष से, वे तो आध्यात्मिक भावों से सम्बन्धित होते हैं। दशलक्षण महापर्व एक ऐसा ही त्रैकालिक शाश्वत पर्व है। इस पर्व के आते ही आबाल वृद्ध सबके हृदय में जिनपूजन, स्वाध्याय, व्रत, उपवासादि के प्रति सहज ही उमंग देखा जाता है। यह पर्व हमारे जीवन को त्याग, वैराग्य और संयम की ओर मोड़ने वाला है। यह आत्म निरीक्षण आत्मपरीक्षण और आत्म विकास के लिए हमें जागृत करता है, सावधान करता है। यह कषायों की निवृत्ति, विकारों का परिष्कार करते हुए अहिंसा, दया, क्षमा, मार्दवादि आत्मगुणों का पोषण करता है। कहा भी है-“परि-समन्तात् उषन्ते दहान्ते पापकर्माणि यस्मिन् तत् पर्यूषणम्” जो सर्वतः पापकर्मों को जलाता है, पाप का क्षय कर आत्म धर्मों को उद्घाटित करता है, आत्म गुणों को प्रकट करता है उसे पर्यूषण कहते हैं। पर्व का अर्थ है गांठ-ग्रन्थि। जो मोह रूपी ग्रन्थि को खोलने की कला सिखाता है ऐसा ये पर्यूषण पर्व

यथार्थतः महान् पर्व है अथवा पर्व का अर्थ है मंगलकाल, पवित्र अवसर। जिन तिथियों में आत्मा में क्षमादि गुण प्रकट होते हैं वे तिथियाँ पर्व कहलाती हैं। यद्यपि धर्म का आधार आत्मा है, तथापि इन पवित्र दिवसों में सामूहिक रूप से धर्म प्रभावना का विशेष कार्य होने से ये पर्व कहलाते हैं अथवा ये आत्महित के हेतु मंगल काल पवित्र अवसर माने गये हैं अतः पर्व हैं।

पर्यूषण पर्व सार्वभौमिक, सार्वकालिक, त्रैकालिक है, कैसे?

पर्यूषण पर्व किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेष से सम्बन्धित न होकर सब जीवों से तथा उनके पवित्र गुणों से सम्बन्धित है इसलिये यह सार्वभौमिक और सार्वकालिक है, शाश्वत है। दशलक्षण महापर्व के सार्वभौमिक होने का कारण यह भी है कि सर्व ही क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों को बुरा, अहितकर तथा क्षमादि गुणों को भला, हितकर माना है और सार्वकालिक भी इसीलिये कहा है कि कोई काल ऐसा ही नहीं जब क्रोधादि को हेय और उत्तमक्षमादि भावों को उपादेय न माना गया हो अर्थात् सर्व कालों में इसकी उपयोगिता-उपादेयता प्रधान रही है।

उपर्युक्त कारणों से पर्यूषण पर्व को जैन धर्म में सर्वोत्तम स्थान प्राप्त है। यह पर्व सब जीवों का समान रूप से हित करने वाला है तथा शाश्वत पर्वों में गिना जाता है।

प्रश्न-यदि पर्यूषण पर्व त्रैकालिक अनादि अनन्त है तो फिर इसके आरम्भ होने की कथा शास्त्रों में क्यों आती है?

उत्तर-शास्त्रों में ऐसा कथन मिलता है कि प्रत्येक अवसर्पिणी काल के अन्त में-जब पंचमकाल समाप्त और छठा काल आरम्भ होता है तब अवसर्पिणी काल में दुःखमा दुःखमा काल के उनचास

दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के बीत जाने पर जन्तुओं को भयदायक धीर प्रलयकाल प्रवृत्त होता है। उस समय पर्वत व शिलादिको चूर कर देने वाली सात दिन तक संवर्तक वायु चलती है। वृक्षों और पर्वतों के भंग होने से मनुष्य और तिर्यच वरु और स्थान की अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हैं। इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात व सम्पूर्ण बहत्तर युगल गंगा सिन्धु नदियों की वेदी और विजयावर्जिन में प्रवेश करते हैं। इस समय देव और विद्याधार दयार्द्र होकर मनुष्यों और तिर्यचों में से संख्यात जीव राशि को उन प्रदेशों में ले जाकर रखते हैं। उस समय गम्भिर गर्जना से सहित मेघ तुहिन और क्षार जल तथा विष जल में से प्रत्येक सात दिन तक बरसते हैं। इसके अतिरिक्त वे मेघों वे मेघों के समूह धूम, धूली, वज्र, एवं जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य ज्वाला इनमें से हर एक को सात दिन तक बरसाते हैं। इस क्रम से भरत क्षेत्र के भीतर आर्यखण्ड में चित्र पृथ्वी के ऊपर स्थित वृत्तगत एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है। व्रज और महाग्नि बल से आर्यखण्ड की बढ़ी हुई भूमि अपने पूववर्ती स्कन्ध को छोड़कर लोकान्त तक पहुँच जाती है। उस समय आर्यखण्ड शेष भूमियों के समान दर्पण तल सदृश कान्तिमान, धूलि, कीचड़, की कलुषत रहित हो जाता है।

उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में सात दिन तक पुष्कर मेघ मुखोत्पादक जल को बरसाते हैं, जिससे व्रजाग्नि से जली हुई पृथ्वी शीतल हो जाती है। क्षीर मेघ उतने ही दिन तक क्षीर जल वर्षा करते हैं। इस प्रकार क्षीर जल से मरी हुई यह पृथ्वी उत्तम कान्ति से युक्त हो जाती है इसके पश्चात् सात दिन तक अमृतमेघ अमृत की वर्षा करते हैं। इस प्रकार 49 दिन में अमृत से अभिविक्त भूमि पर लतागुल्म इत्यादि उगने लगते हैं। उस समय रसमेधा सात

दिन तक दिव्य रस की वर्षा करते हैं। इस दिव्य रस से परिपूर्ण वे सब रस वाले हो जाते हैं। विविधा सम्पूर्ण औषधियों से भरी हुई भूमि सुस्वाद परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गन्धा को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यच गुहाओं से बाहर निकलते हैं। उस समय मनुष्य पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुभित होकर वृक्षों के ग्ल पत्ते मूल आदि खाते हैं और लोगों में पुनः अहिंसक आर्य वृत्ति का उदय होता है। इस तरह एक प्रकार से भाद्र सुदी पंचमी को धर्म का उदय होता है, आरम्भ होता है और उसी वातावरण में दश दिन तक उत्तम क्षमादि दश धर्मों की विशेष आराधना की जाती है तथा इसी आधार पर हर उत्सर्पिणी में यह महापर्व चल पड़ता है।

यह कथा मात्र यह बताती है कि प्रत्येक उत्सर्पिणी काल में इस पर्व का पुनरारम्भ कैसे होता है? इस कथा से दशलक्षण महापर्व की अनादि अनन्तता पर कोई आँच नहीं आती है।

यह कथा भी तो शाश्वत कथा है जो अनेक बार दुहराई गई है और दुहराई जावेगी क्योंकि अवसर्पिणी के पंचम काल के अन्त में जब-जब इसकी पुनरावृत्ति होगी, तब-तब उस युग में दशलक्षण महापर्व का आरम्भ होगा। वस्तुतः यह युगारम्भ की चर्चा है, पर्वारम्भ की नहीं। यह अनादि से अनेक युगों तक इसी तरह आरम्भ को प्राप्त हुआ है और भविष्य में भी होता रहेगा।

इसकी अनादि अनन्तता शारु सम्मत तो है ही, युक्तिसंगत भी है क्योंकि जब से यह जीव है तभी से यद्यपि क्षमा स्वभावी है तथापि प्रकट रूप पर्याय में कर्मोदय से क्रोधादि विकारों से युक्त है और दुःखी है। जब से दुःखी है तब से सुख की आवश्यकता

भी है। चूँकि सभी जीव अनादि से है अतः सुख के कारण क्षमादि धर्मों की आवश्यकता भी अनादि से हो रही है और पर्यूषण पर्व भी अनादि सि) होता है। यह पर्व क्षमा धर्म से शुरू होता है और क्षमावाणी से ही इसका समापन होता है।

उत्तम क्षमा, मार्दवादि यद्यपि चरित्र गुण की निर्मल पर्यायें हैं तथापि प्रत्येक के साथ लगा हुआ उत्तम शब्द सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान तथा संयमावस्था की भी अनिवार्य सत्ता को सूचित करता है।

दस धर्मों के साथ उत्तम विशेषण की सार्थकता-

उत्तम ग्रहणं ख्यातिपूजादिनिवृत्त्यर्थम्-अपनी ख्याति वा पूजा प्रतिष्ठा की भावना की निवृत्ति के अर्थ उत्तम विशेषण दिया है अर्थात् ख्यातिपूजादि के अभिप्राय से धारण की गई क्षमा आदि उत्तम नहीं है॥ चारित्रसार॥

दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनार्थमुत्तम विशेषणम्-दृष्ट प्रयोजन अर्थात् लौकिक प्रयोजन की निवृत्ति के अर्थ इसके साथ उत्तम विशेषण दिया है।

निर्ग्रन्थ मुनिगणों के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी 12 कषायों के अभावरूप उत्तम क्षमादि धर्म होते हैं अर्थात् उत्तम क्षमादि उत्तम पात्र के ही होते हैं किन्तु अंशतः इनका आचरण श्रावकों के भी होता है। पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकों के अनन्तानुबन्धी आदि दो कषाय विषयक क्रोधादि कषायों के अभावरूप क्षमादि धर्म होते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदयाभावरूप क्षमादि धर्म होते हैं। मिथ्यादृष्टि

के उत्तम क्षमादि धर्म नहीं होते हैं उनकी कषायें कितनी भी मन्द क्यों न हो, उनके उक्त धर्म प्रकट नहीं हो सकते क्योंकि उक्त धर्म, कषाय के अभाव से प्रकट होने वाली पर्यायें हैं, मन्दता से नहीं। मन्दता से जो तारतम्य रूप भेद पड़ते हैं, उन्हें शास्त्रों में लेश्या संज्ञा दी गई है, धर्म नहीं। धर्म तो मिथ्यात्व और कषाय के आत्यन्तिक अभाव अथवा उदयाभाव का नाम है, मन्दता का नहीं।

इस प्रकार गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि उत्तम क्षमादि 10 धर्मों की आधारशिला जैनधर्म है क्योंकि जिनधर्म को स्वीकार किये बिना मिथ्यात्व नाश नहीं हो सकता है और अपनी आत्मा में उत्तम क्षमादि गुण भी प्रकट नहीं हो सकते हैं। उत्तम क्षमादि धर्मों को पालन करने से मोह कर्म को नष्ट करते हुए यह जीव क्रमशः अर्हन्त पद को प्राप्त कर परमात्मा बन जाता है।

जैन धर्म का स्वरूप-

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते।
नास्ति परपीडनं यस्मिन् जैनधर्म स उच्यते॥

अर्थात् जो वस्तु को स्याद्वाद और अनेकांत से अनेक धर्मात्मक प्ररूपित करता पक्षपात से रहित है और प्राणी मात्र को पीड़ा नहीं हो ऐसा उपदेश देता है उसे जैन धर्म कहते हैं।

ये क्षमादि गुण प्रत्येक आत्मा में मौजूद हैं किन्तु मिथ्यात्व एवं कषायों से ग्रस्त-अभिभूत होने से विकृत हो रहे हैं। क्षमा की विकृत पर्याय ही क्रोध है, मार्दव की विकृत पर्याय ही मान है इत्यादि। उस विकृति को हटाने के लिए पुरुषार्थ करना होगा। वरु

गन्दा हो जाता है तो गर्म जल, सोड़ा साबुन से धोते हैं, पत्थर पर रगड़कर उसे सफ़ा करते हैं। उसी तरह क्षमादि आत्मगुणों में उत्पन्न हुए विकारों को दूर करने के लिए जो बाधक हैं उनको हटाना होगा और जो साधक सामग्री है उनको ग्रहण करना होगा और यथायोग्य पुरुषार्थ भी करना होगा तब कार्यसिद्धि हो सकती है। यहाँ हम क्रम से एक-एक धर्म के प्रति विचार करेंगे।

इन दशलक्षणों से आत्मा को परमात्मा ब्रह्म होने की जानकारी मिलती है। एक विद्वान् ने कहा है कि जब रावण के 10 मुँह हो सकते हैं ब्रह्मा के 10 मुँह हो सकते हैं ब्रह्म तो उसी प्रकार राम ब्रह्म के 10 मुँह नहीं हैं क्या? ये दशलक्षण विभिन्न धर्म नहीं हैं बल्कि धर्म के दस अंग ही हैं। इन क्षणों में जीवन जीने के लिये नया प्रकाश मिलता है। परमात्मा के प्रति प्रेम श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है।

धर्म का लाभ किसे प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में आचार्यों ने कहा-

देवता विषयासद्रा, नारका दुःख विह्वला।
ज्ञान हीना तिर्यचाः, धर्म योग्या हि मानवः॥

अर्थात् देव पंच इन्द्रिय के विषयों में आसक्त रहते हैं नारकी दुःखों से खिन्न ब्रह्मद्विग्न रहते हैं और तिर्यचों को धर्म कर्म का ज्ञान नहीं है धर्म के योग्य एक मात्र मानव ही है यदि मनुष्य गति में रहकर धर्म कार्य नहीं किया तो कोई ठिकाना नहीं कब जीवन का अन्त आ जाए और मनुष्य गति रूपी रत्न खो जावे जीवन क्षण भंगुर है कहा भी है-

क्षणं चित्तं क्षणं वित्तं, क्षणं जीवित मानवः।
यमस्य करुणा नास्ति, धर्मस्य तुरतः गतिः॥

अर्थात् क्षण-क्षण में चित्त परिवर्तित होता है और वित्त स्थित नहीं है इंसान का जीवन भी कुछ क्षणों का है। अन्तिम क्षण आने पर यमराज करुणा नहीं करता है।

अतः धर्म का जब भी अवसर प्राप्त हो शीघ्र ही धर्म के कार्य में लग जाना चाहिए क्योंकि इंसान की शोभा शरीर से नहीं धर्म से होती है। कहा भी है-

रूपयौवन सम्पत्काः विशाल कुल सम्भवाः।
धर्म हीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका॥

अर्थात् रूप यौवन से सम्पन्न उच्च कुल को पाकर भी धर्म से हीन इंसान शोभा को प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार से सुगन्ध हीन सुन्दर किंशुक पुष्प को कोई पसन्द नहीं करता। वह वृक्ष के नीचे पड़े-पड़े सड़ता रहता है क्योंकि लाक में रूप यौवन की नहीं गुण की कीमत होती है। कहा भी है-

यथा चन्द्र बिना रजनी, कमलेन सरोवरम्।
तथा न शोभन्ते जीवो, बिना धर्मेण सर्वदा॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के अभाव में रात्रि कमल के अभाव में सरोवर शोभा को प्राप्त नहीं होता है। उसी प्रकार धर्म से हीन इंसान भी शोभा को प्राप्त नहीं होता है।

अतः जब तक जीवन है तब तक धर्म के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए क्योंकि संसार में इंसान के लिए जो कुछ

भी वैभव प्राप्त होता है। वह धर्म के नल से प्राप्त होता है। कहा भी है-

अग्निं वि य होदि हिमं होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं।
जीवस्य सु धम्मादो, देवा वि य किंकरा होंति॥

धर्म के प्रभाव से अग्नि भी र्क हो जाती है और भुजंग ब्रह्मसर्पत्र भी उत्तम रत्नों का हार बन जाता है और देव भी किंकर अर्थात् सेवक हो जाते हैं। इस प्रकार धर्म का अचिन्त्य प्रभाव है शास्त्रों में एक कथा प्रसिद्ध है।

एक बार एक सेठ के 2 पुत्र थे। बड़ा पुत्र पूर्व पुण्य के उदय से धनवान किन्तु विधर्मी और छोटा पुत्र धर्मात्मा किन्तु गरीब था। लोगों ने बड़े भाई से कहा कि छोटे भाई का सहयोग करना चाहिए। तब बड़े भाई ने समझाते हुए कहा धर्म कर्म मन्दिर छोड़ो कुछ काम करो तभी कुछ मिलेगा तब छोटे भाई ने कहा-सब कुछ धर्म से ही मिलता है दोनों के बीच शर्त लग गई इसका निर्णय करने के लिए मुनिराज को चुना और दिन भी निश्चय कर लिया गया। निश्चित दिन को छोटा भाई मन्दिर से पूजन करके बाहर निकला तभी उसके पैर में काँटा चुभ गया। दूसरी ओर बड़ा भाई वेश्या के यहाँ रात्रि में नृत्य देखता रहा। सुबह घर की ओर आते समय स्वर्ण मुद्राओं से भरी हुई थैली प्राप्त हुई छोटे भाई को लंगड़ाकर चलते हुए देखकर पूछा-भाई क्या बात है पैर में क्या हो गया? छोटे भाई ने कहा-पूजन करके आते समय पैर में काँटा चुभ गया तब बड़े भाई ने थैली दिखाते हुए कहा-देख मैं वेश्या के यहाँ से नृत्य देखकर आ रहा था तब रास्ते में मुझे यह थैली प्राप्त हुई। यहीं सारा निर्णय हो गया अब क्या नयदा वहाँ तक

जाने से किन्तु छोटे भाई ने शर्त अनुसार जाना निश्चित किया।

महाराज के पास पहुँचकर प्रश्न किया कि इंसान को जो नल प्राप्त होता है वह धर्म से या पुरुषार्थ से प्राप्त होता है और बड़े भाई ने सारी घटना कह सुनाई। तब अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा-भाई तेरे लिए जो थैली प्राप्त हुई है। इसके स्थान पर तेरा राज तिलक होने वाला था किन्तु पाप प्रवृत्ति के कारण सक्रमित होकर मात्र थैली रूप में बचा और तेरे छोटे भाई की आज सर्प के काटने से मौत होने वाली थी धर्म के नल से मात्र काँटे रूप में रह गई। तुम दोनों शहर में जाकर देखो उस स्थान पर पत्थर के नीचे काला साँप बैठा है और राजा का मरण होने पर राज तिलक हेतु योग्य राजा की खोज जारी है।

दोनों नगर में जाकर देखते हैं सत्य हुआ तब से बड़ा भाई भी धर्म का श्र)नी हो गया।

इस कहानी से शिक्षा प्राप्त होती है कि संसार में इंसान का सबसे बड़ा मित्र बन्धु हितैषी धर्म है उसे हमेशा अपने जीवन में धारण करना चाहिए क्योंकि धर्म अन्तरात्मा की निधि है, पर से निज की ओर आना है धर्म, मानवता का पुष्प है धर्म, सन्मार्ग का बढ़ता कदम है धर्म, समताभाव का नाम है धर्म, मोक्ष का द्वार है धर्म, आत्म ज्ञान का नाम है धर्म, भावों की निर्मलता का नाम है धर्म, धर्म समीचीन धर्म की दस सीढ़ियाँ है उस पर चढ़कर अनन्त सुख का भोग करना है।

गुरु चरणों का सेवक है, जो करता है पद में वंदन।
आत्मशांति का बीज डालकर, काटे भव-भव का बंधन॥

समय सार के हे आराधक!, सदा समय में रमते नाथ।
परम समय को मैं पा जाऊँ, मुझको ले लो अपने साथ॥

काल यह अनादि है धर्म भी अनादि है।
कल्पकाल बीतने पै होत प्रलय काल है।
दुःखम से अति दुःखम काल के जो अन्त में,
सात ऋषयः कोटि वृष्टी होती विकराल है।
ता पीछे वृष्टी फिर होय विशद शीतल शुभ
जीवन हो मंगलमय होता सुकाल है।
या को ही लक्ष्य मान पर्वराज पर्यूषण ,
तीन ऋषयः बार वर्ष में मानवे की चाल है॥१॥

रिमझिम बरसात में मोती पिरोता है कोई-कोई।
नर जन्म को पाकर फल बनाता है कोई-कोई॥
यूँ तो रोज आते हैं चले जाते हैं दुनियाँ से लोग।
पर सद् धर्म से जीवन सजाता है कोई-कोई॥

जो भरा नहीं भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसको कि धर्म से प्यार नहीं।

जो माता-पिता का न हुआ तो तकदीर का क्या होगा।
जो परमात्मा का भक्त न हुआ तो तदवीर का क्या होगा।
सुख शांति की चाहत है जीवन में तो भक्ति करो।
धर्म हीन तो कायर है वह महावीर का क्या होगा॥

उत्तम क्षमा धर्म

- | | | |
|--------------------------------|-----------|---------------------------|
| 1. क्रोध विष है तो | - | अमृत है क्षमा |
| 2. क्रोध करत है तो | - | प्यार है क्षमा |
| 3. क्रोध नाग है तो | - | क्षमा है गरुड़ |
| 4. क्रोध अग्नि है तो | - | शीतल जल है क्षमा |
| 5. क्रोध नर्क है तो | - | स्वर्ग है क्षमा |
| 6. क्रोध शूल है तो | - | तूल है क्षमा |
| 7. क्रोध कालापन है तो | - | उज्ज्वलता है क्षमा |
| 8. क्रोध शत्रु है तो | - | मित्र है क्षमा |
| 9. क्रोध विनाश है तो | - | विकार है क्षमा |
| 10. क्रोध बकवास है तो | - | सद् उपदेश है क्षमा |
| 11. क्रोध क्रूरता है तो | - | करुणा है क्षमा |
| 12. क्रोध दुःख का भण्डार है तो | - | सुख का खजाना है क्षमा |
| 13. क्रोध विभाव है तो | - | स्वभाव है क्षमा |
| 14. क्रोध अधोमार्ग है तो | - | ऊर्ध्वराह है क्षमा |
| 15. क्रोध अन्धकार है तो | - | प्रकाश है क्षमा |
| 16. क्रोध कटुवचन है तो | - | मृदुवचन है क्षमा |
| 17. क्रोध रुलाता है तो | - | हंसाता है क्षमा |
| 18. क्रोध पतित करता है तो | - | उत्थान करता है क्षमा |
| 19. क्रोध मलिन करता है तो | - | पवित्र करता है क्षमा |
| 20. क्रोध हिंसा है तो | - | अहिंसा है क्षमा |
| 24. क्रोध काली रात है तो | - | क्षमा है प्रातः की लालिमा |
| 25. क्रोधा मुर्दा है तो | - | क्षमा जीवन है |
| 21. क्षमा धीरों की धरोहर है | 22. क्षमा | वीरों का आभूषण है |
| 23. क्षमा भाईचारा का प्रतीक है | | |

“क्रोधोत्पत्ति निमित्तानां सकिधाने सति कालुष्याभावः क्षमा॥
क्रोधोत्पत्ति का निमित्त मिलने पर भी कालुष्य भाव उत्पन्न नहीं
होना क्षमा है।

क्षम्यते: इति क्षमा:। मरु करने को क्षमा कहते हैं। क्षमा में

लगा उत्तम शब्द वीतरागता का सूचक है। जब तक जीवन में
क्रोध नहीं आता तब तक क्षमा की परीक्षा नहीं होती और जब
तक परीक्षा नहीं होती तब तक वह व्यक्ति कैसे कह सकता है कि
मैं क्षमावान् हूँ।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुर णर तिरिएहिं कीरमाणे वि।

उवसग्गे विरउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होइ॥

अर्थ-देव, मनुष्य और तिर्यचों के द्वारा भयंकर उपसर्ग
किये जाने पर भी जो क्रोध के द्वारा संतप्त नहीं होता अर्थात् क्रोध
नहीं करता, उसके उत्तम क्षमा धर्म होता है।

भावार्थ-जो स्वेच्छा से चला कर सहे जाते हैं, वे परिषह
कहे जाते हैं और जो अचानक आ पड़ने पर समता भाव पूर्वक
सहे जाएं, वे उपसर्ग हैं। जो घोर क्षुधा आदि बाईस परिषह एवं
चार उपसर्गों के आने पर भी क्रोध अग्नि से नहीं तपता, वह उत्तम
क्षमा है।

उपसर्ग के चार भेद है-देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यचकृत
और अचेतनकृत। जो मुनि इन चारों ही प्रकार के भयानक उपसर्गों
से विचलित न होकर अपने मन में भी क्रोध का भाव नहीं लाता
है, वही मुनि उत्तम क्षमा का धारी होता है। शास्त्रों में ऐसे क्षमा
शील मुनियों के अनेक कथानक पाए जाते हैं।

श्री दत्त मुनि व्यंतर देव द्वारा किये गये उपसर्ग को
जीतकर वीतराग निर्विकल्प ध्यान के द्वारा चार घातिया कर्मों को
नष्ट करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए और निर मुक्त हो गये।
विद्युत्चर मुनि चामुण्डा नाम की व्यन्तरी के द्वारा किये गये घोर
उपसर्गों को सहन कर वीतराग निर्विकल्प समाधि के द्वारा सर्वार्थ
सि) में गये। राजा श्रेणिक का पुत्र चिलाती पुत्र नामक राजकुमार
मुनि बनने पर व्यन्तरी के द्वारा किये गये उपसर्ग सहनकर उत्कृष्ट
ध्यान के बल से मरकर सर्वार्थ सि) में गया। स्वामी कार्तिकेय

मुनि ने क्रौंच राजा के द्वारा किये गये उपसर्गों को साम्यभाव से सहन कर देवलोक प्राप्त किया। गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मण के द्वारा किये गये घोर उपसर्गों को क्षमा भाव से सहनकर शुक्ल ध्यान के द्वारा कर्मों का क्षय कर के मोक्ष गये। दण्डक राजा ने अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनियों को कोल्हू में पेल दिया था, वे सभी समाधि मरण करके मुक्त हुए। गजकुमार मुनि ने पांसुल सेठ के द्वारा किये गये घोर उपसर्गों को सहन कर मुक्ति प्राप्त की। चाणक्य आदि पाँच सौ मुनि मंत्रों द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन कर शुक्ल ध्यान के द्वारा मुक्त हुए।

सुकुमाल मुनि श्रृंगाली के द्वारा खाये जाने पर शुभ ध्यान से मर कर देव हुए। सुकौशल मुनि सिंहनी के द्वारा, जो पूर्वभव में उनकी माता थी, खाये जाने पर शांत भावों से प्राण त्यागकर सर्वार्थ सिद्धि गये। श्री वणिक् मुनि जल का उपसर्ग सह कर मुक्त हुए। बत्तीस श्रेष्ठिपुत्र नदी में बहने पर शुभ ध्यान से मर कर स्वर्ग में देव हुए।

इस प्रकार घोर उपसर्ग आने पर भी जो क्षमा भाव से विचलित नहीं होते हैं, वे ही उत्तम क्षमा के धारी होते हैं। आशय यह है कि मुनिजन शरीर को बनाए रखने के लिए आहार की खोज में गृहस्थों के घर जाते हैं, उस समय दुष्ट मनुष्य उन्हें देखकर हंसते हैं, गाली बकते हैं, उपहास करते हैं (किन्तु क्रोध उत्पन्न होने के इन सभी कारणों के होते हुए भी वे मन में जरा भी कलुषता का भाव नहीं आने देते, इसी का नाम उत्तम क्षमा है। ऐसे समय में मुनियों को विचार करना चाहिए कि उत्तम क्षमा धर्म मोक्ष की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान है।

यदि शान्ति चाहते हो तो इन्साफ करना होगा।
अगर स्नेह चाहते हो तो, माफ करना होगा।
परमात्मा के द्वार पर देर है, अंधेर नहीं।

यदि आत्मशांति चाहते हो तो हृदय सफ करना होगा।

इस सम्बन्ध में एक रूपक आता है-

एक बार एक व्यक्ति एक कुदाली से मिट्टी को खोदता है। तभी मिट्टी धरती से कहती है, माँ-माँ मुझे बहुत कष्ट हो रहा है, तब माँ ब्रधरतीऋ उसे समझाती है बेटा क्षमा त्वारण करो। इसके बाद व्यक्ति उस मिट्टी को गठरी में ले जाने लगता है तो वह पुनः रोने लगती है। धरती माँ फिर उसे वही बात कहती है, बेटा क्षमा धारण कर। इसके बाद वह घर ले जाकर आँगन में पटकता है, फिर उसका रोना शुरू होता है और धरती माँ फिर उसे समझाती है। इस प्रकार बारी-बारी से कष्टों को सहन करते हुए वह अन्त में घड़ा बनाने के लिए घुमाने लगता है। फिर उसे बहुत कष्ट होता है। फिर माँ पुनः समझाती है थोड़ा सा कष्ट और है। घड़ा बनने एवं पकने के बाद कुम्हार जब घड़ों को ले जाता है तो बहुत संभालकर रखता है। तब मिट्टी बहुत खुश होती है। तब धरती माँ ने कहा देख तूने हर बार कष्ट पीड़ा को सहन करके क्षमा धारण किया तू ऊपर उठ गई। अतः ऊपर उठने के लिए, पतित से पावन बनने के लिए अपने हृदय में क्षमा को धारण करना पड़ेगा।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमन्तु मे।

मिच्ची मे सव्व भूदेसु वैरं ज्झं ण केण वि।।

भगवान महावीर स्वामी के काल से बराबर प्रतिक्रमण चल रहा है। गौतम स्वामी ने कहा मैं सभी प्राणियों से क्षमा माँगता हूँ एवं क्षमा करता हूँ। किसी से मेरा बैर नहीं। क्षमा बेचने, खरीदने, माँगने व देने की वस्तु नहीं है। क्षमा तो आत्मा का स्वभाव है। इसे आत्मा में धारण किया जाता है। यह व्यवहार में कहा जाता है कि मुझे क्षमा दे दो। क्षमा के विपरीत क्रोधा है।

क्रोध को अन्धा व आग के समान कहा है। जब व्यक्ति को क्रोध आता है तब वह किसी को नहीं देखता। जब क्रोधा आता है तो क्रोधी व्यक्ति अग्नि जैसा लाल हो जाता है।

जब हो जाता मनुज के क्रोध असवार।
आँख बन्द होती तुरत, खुलता मुख का द्वार॥

क्रोध अनर्थ का पिटारा, विवेक का दुश्मन, पीड़ा की पर्याय, होश पर प्रहार, पागलपन, मूर्च्छा, क्षयरोग, दुःख का भण्डार, बेहोसी की दवा, बिच्छू का डंक, स्वयं का हत्यारा है। क्रोध और क्षमा धूप छांव की तरह विरोधी है।

पण्डित गोपालदास जी शांत एवं क्षमा स्वभाव के थे। पण्डित जी की पत्नी अत्यन्त क्रोधी स्वभाव की थी। वह विभिन्न प्रतिष्ठा पूजा शिविर आदि में जाया करते थे। एक बार की बात है ठण्ड का समय था वे प्रवचन करने लगे। आठ बजे आने को कहकर गये थे लेकिन किसी कारण से 12 बजे तक वापिस आ पाये। श्रीमती क्रोध में लाल पीली होकर अपनी योजना बना रही थी, कि पण्डित जी को आज ठण्ड में इंतजार करने का क्या नल है? समझाना है। जैसे ही पण्डित जी ने दरवाजा खटखटाया अन्दर से पण्डितानी पानी की भरी बाल्टी लेकर आई और पण्डित जी के ऊपर डाल दिया। पण्डित जी मुस्कराते हुए बोले मैं सोचता था कि जो बादल गरजते हैं वह बरसते नहीं, लेकिन आज तो गरजने वाले बादल भी बरस गये। यह सुनकर पण्डिताइन पानी-पानी हो गई और क्षमा माँगने लगी। यह है क्षमा धारण करने की महिमा।

आजकल दुनियाँ के लोग हमेशा ऊपर देखकर चलते हैं। जब तक व्यक्ति को ठोकर न लगे, तब तक वह नीचे देखकर नहीं चलता। जब एक ठोकर लग जाती है तो नीचे देखकर व सम्भलकर चलना सीख जाता है। आगम में एक कथानक आता

है। एक सेठ की पुत्री बड़ी क्रोधी थी। उसे लोग तुंकारी के नाम से चिढ़ाया करते थे। वह शादी योग्य हो गई किन्तु उससे कोई शादी करने को तैयार नहीं था एक जुआरी जो जुआ में अपना सब कुछ हार गया। लोग उसे पीट रहे थे। सेठ ने उसे पास बुलाकर समझाया कि तुम दो बात मान लो तो तुम्हारी सभी समस्याएँ हल हो जायेगी।

1. जुआ खेलना छोड़ दो 2. मेरी पुत्री से विवाह कर लो

मरता क्या न करता? अतः उसने दोनों बातें स्वीकार कर लीं और शादी हो गई। सेठ ने उसे समझा दिया कि कभी इसे तुंकारी नहीं कहना यह बहुत चिड़ती है। एक बार उसका पति देरी से घर आया। जब उसने दरवाजा नहीं खोला तो वह बोला तुंकारी दरवाजा खोल। तुंकारी ने क्रोध में आकर दरवाजा खोला और तुंकारी द्वपत्नीऋ जंगल की ओर बढ़ गई। जंगल में वह एक भील के हाथों में नँस गई। भील उसे खूब खिलाता-पिलाता लेकिन एक माह में उसका सारा का सारा खून निकाल लिया करता था। उससे लाक्षादि तेल का निर्माण करता था। रक्त निकलने पर उसे बहुत कष्ट होता था और वह बहुत दुबली होकर मरने को हो जाती थी तो उस खून से बना लक्षादि तेल आदि लगाने से ठीक हो जाती थी।

एक बार वह भील के जाल से भागने में फल हो गई और एक निःसंतान सेठ के पास पहुँची सेठ ने उसे पुत्री के समान पाला पोसा और अच्छी तरह से रखा वहाँ रहकर जड़ी बूटियों से लाक्षादि तेल बनाने लगी। एक समय काययोग की साधना करते हुए मुनिराज का सिर किसी तांत्रिक ने जला डाला। जब सिर हिला तो वह भाग गया। सुबह एक सेठ जी को पता चला तो वह मुनि सेवा अपना धर्म समझकर वहाँ से उठाकर ले आये। औषत्ति पूछने

पर पता चला कि तुंकारी के पास इसकी औषधि मिलेगी। सेठ के औषधि माँगने पर तुंकारी ने कहा कि छत के ऊपर से एक घड़ा ले आओ। सेठ जाकर घड़ा लाते हैं। किसी कारण घड़ा गिर जाता है तो सेठ तुंकारी से कहते हैं कि घड़ा गिर गया तो तुंकारी ने कहा पुनः ले आओ। इसी प्रकार छः घड़े नूट गये। अन्त में दुःखी होकर पश्चाताप करते हुए सेठ ने कहा-मेरे द्वारा आपकी इतनी क्षति हो गई फिर भी आप मेरे लिए बराबर औषधि देने को तैयार हैं। आपके पास में 7 में से 6 घड़े नूटने पर भी आपको क्रोध नहीं आया। इसका कारण क्या है ? तुंकारी ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की कहानी सुना दी और कहा आप शीघ्र जाकर मुनिराज के स्वास्थ्य हेतु उपचार करायें और यदि मेरे लायक कोई सेवा हो तो अवश्य याद करें।

अब आप मुझे क्षमा करें, पता नहीं मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि जो भी घड़ा उठाकर आगे बढ़ता हूँ कि घड़ा गिर कर नूट जाता है। तब तुंकारी ने एक घड़ा लाकर सेठजी के पास भेज दिया। सेठजी ने तुंकारी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा-आप धन्य हैं, आपकी क्षमा और धैर्य धन्य है।

प. पू. आ. महावीर कीर्ति महाराज के संघ की घटना है कि जब वे विहार द्धगमनऋ करते हुए जा रहे थे, 5-7 शराबियों ने मुनिराज पर रास्ते में लाठियाँ बरसाई जब संघपति मुनिराज को बचाने की कोशिश करने लगे तब उस पर भी लाठियों का प्रहार हुआ वह भी घायल हो गये। उसी समय वहाँ एक पुलिस की गाड़ी निकली। उन्होंने यह देखा तो उन व्यक्तियों द्धशराबियोंऋ को बन्दी बना लिया। इंस्पेक्टर ने मुनि श्री के चरणों में मस्तक रखा और क्षमा माँगते हुए कहा-कि ये जो शराबी हैं, इन्हें हम कठोर सजा दिलायेंगे आप हमें क्षमा कर दें। मुनिराज ने कहा-ये तो

हमारे अपराधी हैं इन्हें दण्ड देने का अधिकार हमको है। तब इंस्पेक्टर ने कहा-ठीक है महाराज आप जो सजा कहेंगे वही सजा दी जायेगी। महाराज ने कहा-वचन दीजिए। इंस्पेक्टर ने कहा-हम वचन देते हैं आप जो सजा देंगे वही स्वीकार है। तब महाराज ने कहा-इन्हें छोड़ दिया जाए। जैसे ही उनको छोड़ा गया वे सभी मुनिश्री के चरणों में गिर पड़े और आचार्य महावीर कीर्ति महाराज के परम भक्त बन गये।

महाभारत में एक घटना याद आती है। जब महाभारत का काल था, उस समय दुर्योधन ने चिन्ता मग्न होकर द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा से कहा-मित्र! जब तक मैं पाण्डवों के कटे हुए सिर नहीं देख लूंगा, तब तक मेरा जीवन हराम है दिल में चैन नहीं है। मित्र मेरी अन्तिम इच्छा है कि तुम पाण्डवों के सिर मेरे पास लाओ तभी दिल में चैन आयेगा।

अश्वत्थामा ने जोश में आकर वचन दे दिया भाई मैं तुम्हें पाण्डवों के सिर लाके न दू तो अपना मुख नहीं दिखाऊंगा। वचन देना तो आसान है पर निभाना बड़ा कठिन होता है और फिर पाण्डवों के सिर काटकर लाना बड़ी टेढ़ी खीर है। टेढ़ी खीर तो आपने देखी होगी, खाई होगी, जानते होंगे।

श्रोता-नहीं जानते हैं और न देखी है तो सुनो

एक बार एक नगर में एक धनिक सेठ रहता था उसका व्यापार चारों ओर दूर-दराज तक फैला था। सब प्रकार से सुखी था किन्तु एक दुःख था कि उसके घर में एक खिलौना नहीं था। आप समझ गये होंगे कि खिलौने का अर्थ उनके घर बच्चा नहीं था। बेचारा बड़ा परेशान रहता था। एक बार मुनिराज के दर्शन किए तो उन्होंने कहा-तुम भाव सहित जिन पूजन करो तो अवश्य ही

तुम्हें संतान की प्राप्ति होगी “नान्यथा मुनिभाषणं” सूक्ति के अनुसार वचन गलित हुए और 2 वर्ष में ही सेठ के घर में किलकारियाँ गूँजने लगीं। सेठ ने प्रसन्न होकर भोज दिया। जिसमें दूर-दूर से लोग आये और भोजन करके जा रहे थे तब आपस में भोजन की प्रशंसा करते हुए चल रहे थे कोई लड्डू की बात करता तो कोई बरनी पेड़े की बात करता। उनमें से एक बुजुर्ग व्यक्ति ने कहा-अरे! ये सब छोड़ो आज के जैसी खीर हमने अपने जीवन में कभी नहीं खाई। यह बात द्वार पर बैठा एक जन्मांध व्यक्ति सुन रहा था। उसने कभी खीर न देखी थी न खाई थी तो उसने पास बैठे बालक से पूछा-क्यों बेटा तूने कभी खीर देखी तब बालक ने उत्तर दिया-हाँ, दादाजी मैंने खीर देखी है। दादाजी ने पूछा खीर कैसी होती है? तब बालक ने कहा-दादाजी खीर स्फेद होती है। अन्धा व्यक्ति स्फेद क्या जाने। तब उन्होंने कहा-यह स्फेद क्या होता है? बालक ने पुनः कहा-स्फेद बगुला होता है। तब पुनः दादाजी ने पूछा बगुला, यह बगुला क्या होता है? तब बालक ने अपना हाथ टेढ़ा करते हुए कहा-बगुला इस हाथ के जैसा होता है। तब दादाजी ने हाथ ढेरते हुए देखा और कहा-हे भगवान! इतनी टेढ़ी खीर ये तो हमसे नहीं खाई जाएगी। तब से यह टेढ़ी खीर की कहावत चल पड़ी।

तो अपनी बात चल रही थी युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के सिर काटकर लाना हंसी खेल का काम नहीं। किसी शेर की मुँछ उखाड़कर लाना और सर्प के मुँह से दाँत तोड़कर लाना तो फिर भी हो जाए किन्तु यह कार्य असम्भव था। तब अश्वत्थामा ने अपने मन में एक पाप विचारकर द्रौपदी के छोटे-छोटे 5 पुत्रों के गले काटकर दुर्योधन के सामने लाकर रख दिए और कहा-मित्र यह लो पाण्डवों के सिर आपके चरणों में पड़े हैं। उस दृश्य को देखकर दुर्योधन का भी हृदय काँप उठा और कहा-तूने ये अनर्थ

क्यों कर डाला? इन मासूमों के नहीं उन शेर पाण्डवों के सिर काटकर लाने को कहा था। तू तो बड़ा दुष्ट निकला।

अपने पुत्रों के कटे हुए गले हीन धड़ को द्रौपदी ने देखा तो मूर्च्छा खाकर गिर गई पाण्डव परिवार में हा-हाकार मच गया। भीम और अर्जुन की आँखों की क्रोधाग्नि का धूम उठने लगा। द्रौपदी को होश में लाने का प्रयत्न किया। उस समय भीम और अर्जुन बादल जैसे गरज रहे थे कि किसने ये नीच कर्म किया है अभी उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। तब द्रौपदी ने धैर्य धारण करते हुए कहा-हाँ हम जानते हैं कि आप उस मच्छर की तो बात क्या पर्वत को भी मिट्टी में मिला सकते हैं किन्तु ध्यान रखें यह अपराधी हमारा है। हमारे बेटे का वध किया है इसलिए उसे दण्ड देने का अधिकार हमारा है। तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने कहा ठीक है जो आप कहेंगी वही दण्ड दिया जाएगा। तब द्रौपदी ने पाण्डवों से वचन लेकर कहा-उसे अभयदान दिया जाए। सभी लोग आश्चर्यचकित होकर कहने लगे द्रौपदी आपने ऐसा क्यों किया। तब द्रौपदी ने कहा-मैंने पुत्र वियोग की पीड़ा को सहन किया है, अनुभव किया है, मैं उसे दण्ड दिलवाकर किसी अन्य माँ के लिए पुत्र वियोग की पीड़ा नहीं दिलवाना चाहती हूँ। अतः अश्वत्थामा के लिए क्षमा कर दिया जाए धन्य हो ऐसी महासती की दया और क्षमा।

आज हमने क्षमा की महिमा के बारे में जाना। वह छोड़ना नहीं जोड़ना सिखाता है। क्रोध द्वागुस्साक्र का परिणाम बड़ा बुरा हुआ करता है। अतः क्षमा करते रहना चाहिए। क्रोधा को जीतने के लिए हमें क्रमशः क्रोध का स्थान बदल देना चाहिए क्रोध का विषय बदल देना चाहिए, या क्रोध के समय मौन ले लेना चाहिए। फिर भी न माने तो तीनों काम एक साथ करके क्षमाधारण करना चाहिए। यदि आपने क्षमा धारण कर लिया तो जो आपसे क्रोध

कर रहा था, वह आपसे क्षमा माँगने जरूर आवेगा। क्षमा शब्द को विच्छेद कर विशेष समझा जा सकता है।

क्षमा = क्ष + मा

क्ष = क्षत्र होता है, जो तीन लोक के नाथ जिनालय में विराजमान है उनके ऊपर छत्र लगा होता है। जो तीनों लोकों के नाथ का प्रतीक है। उसी प्रकार क्षत्रिय की भाँति क्षमा धर्म कर्मों से आत्मा की रक्षा करता है।

माँ - जिसके अन्दर माँ की भाँति सहनशीलता सहिष्णुता, ममता और प्रेम आ जाये वह क्षमा है।

क्षमा तो वास्तव में आत्मा का स्वभाव होता है। आज के पूर्व सभी महापुरुषों ने क्षमा रूपी अरु को ही धारण किया है। क्षमा रूपी अरु से अच्छे-अच्छे यो)ओं को जीता जा सकता है। उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

शास्त्रों में पृथ्वी के अनेक पर्यायवाची शब्द आये हैं पृथ्वी को माँ, विश्वंभरा, धरा, धरि, सर्वहरा, गंधवती, रत्नगर्भा आदि जो माँ की विशालता, गम्भीरता, सहिष्णुता, उदारता, ममता, विनय, विवेकशीलता के परिचायक तथा उद्घोषकता को प्रकट करते हैं।

क्षमा का वास्तविक स्वरूप आपको इस घटना से परिलक्षित होगा। एक बार एक जुलाहा अपने कपड़े बेच रहा था। एक व्यक्ति द्वारा एक कपड़े की कीमत पूछी गई। जुलाहा ने मूल्य 100 रु. ब्रह्मसौ रु. ब्रह्म बताया। उस व्यक्ति ने कपड़े के दो टुकड़े करके एक टुकड़े का दाम पूछा, तब जुलाहे ने शान्ति से उत्तर दिया 50

रु. ब्रह्मचास रु. ब्रह्म। इसी प्रकार उसने पुनः दो टुकड़े करके पूछा कि इसका दाम क्या है? उसने कहा 25 रु. ब्रह्मपच्चीस रु. ब्रह्म इसी प्रकार एक के बाद एक टुकड़े करता रहा। अन्त में उस व्यक्ति का सिर शर्म के कारण झुक गया। उस व्यक्ति ने जुलाहे के सामने 200 रु. रख दिये। जुलाहे ने लेने से इन्कार कर दिया, तब व्यक्ति ने सभी टुकड़े रख लिये और 200 रु. दिये तब जुलाहे ने मात्र 100 रु. ही स्वीकार किए। इस प्रकार की क्षमा की आवश्यकता है। केवल कह देने से ही क्षमा नहीं मान लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध में और भी अनेक दृष्टान्त शास्त्रों में उपलब्ध हैं।

उपदेश की सार्थकता तभी होगी, जबकि आपकी जिसके प्रति बुराई हो उससे क्षमा माँगें।

हमको नूल की तरह खिलाए रखना।
हमको नूल में गन्ध सा मिलाए रखना॥
हम आपके चरणों की धूल हैं गुरुवर।
हमारे लिए चरणों में जगह बनाए रखना॥

क्रोध के उदय में, न बोध होय आत्म को
इंसां को क्रोध भाई अन्धा कर देत है
दुखों का मूल है, आत्म की भूल है
कर्मों की वृत्ति को उपजाऊ खेत है
क्षमा है स्वभाव तेरो उत्तम जो धर्म है
कर्मों से मुक्त होय क्षमा जो धर लेत है
राग द्वेष मोह में सदियाँ जो बीत गईं
ज्ञान नेत्र खोल अब, चेतन कब चेत है

क्रोध से इंसां की जिन्दगी धूल हो जाती है।
वैर विरोधा में इंसानियत निर्मूल हो जाती है॥
क्षमा वह अपूर्व अमृत है प्यारे भाई।

क्षमा से इंसान की जिन्दगी बूल हो जाती है॥

क्षमावान् सम विश्व में नहीं है कोई संत।

क्षमावान् करता सदा निज कर्मों का अन्त॥

क्षमावान् होता स्वयं विशद एक महामन्त्र।

क्षमा धारकर पूर्ण वह हो जाता भगवंत॥

जिस समय इंसान के दिल में ज्ञान की ज्योति जल जाएगी।

उसी क्षण हृदय के अन्दर से हर टीस निकल जाएगी॥

एक क्षण के लिए अपने अन्दर में क्षमा धारण करके तो

द े ख ा ा े ।

उसी क्षण आपकी यह जिन्दगी बदल जाएगी॥

ॐ कृपे श्री उत्तम क्षमा धर्मान्नाय नमः

उत्तम मार्दव धर्म

मक्खन मार्दव भाव है तो	-	पत्थर मान है
नम्रता मार्दव भाव है तो	-	कठोरता मान है
विनय मार्दव भाव है तो	-	अविनय मान है
बूल मार्दव भाव है तो	-	शूल मान है
केला मार्दव भाव है तो	-	सुपारी मान है
राम मार्दव भाव है तो	-	रावण मान है
सागर मार्दव भाव है तो	-	पर्वत मान है
आचरण मार्दव भाव है तो	-	मरण मान है

काठ की नाव मार्दव भाव है तो	-	सिला की नाव मान है
महानता मार्दव भाव है तो	-	दीनता मान है
जल मार्दव भाव है तो	-	मल मान है
द्वार मार्दव भाव है तो	-	दीवार मान है
हरा भरा वृक्ष मार्दव भाव है तो	-	ठूठ मान है
अमृत मार्दव भाव है तो	-	मीठा जहर मान है
अच्छ मित्र मार्दव भाव है तो	-	मीठा ठग मान है
शक्ति मार्दव भाव है तो	-	हीनता मान है
स्वाभिमान मार्दव भाव है तो	-	अभिमान मान है
उच्चता मार्दव भाव है तो	-	तुच्छता मान है
उदारता मार्दव भाव है तो	-	हीनता मान है
गम्भीरता मार्दव भाव है तो	-	उच्छृंखलतापन मान है
सुगन्ध मार्दव भाव है तो	-	दुर्गन्ध मान है
सद्गुण मार्दव भाव है तो	-	दुर्गुण मान है
अमूढता मार्दव भाव है तो	-	मूढता मान है

जीवन की समस्या है अहंकार, समाधान है ॐकार

“मृदुर्भावः मार्दवः” मृदुता, कोमलता, विनम्रता के भाव को मार्दव गुण कहते हैं।

उत्तम णाण पहाणो उत्तम तवयरण करण सीलो वि।

अप्पाणं जो हीयदि मद्दव रयणं हवे तस्स॥

अर्थात्- उत्तम ज्ञान में प्रधान उत्तम तपस्या के स्वभाव वाला तपस्वी होकर भी जो स्वयं को लघु व्यक्त करता है मद नहीं करता है उस भव्य जीवों को उत्तम मार्दव धर्म होता है।

मार्दव धर्म मान रूपी शत्रु को नष्ट करने वाला है। क्षमा को विकृत करने वाली कषाय क्रोधा एवं मान ये दोनों द्वेष रूप हैं तथापि इनकी प्रकृति में भेद है। जब कोई हमें गाली देता है तो क्रोध आता है पर जब कोई प्रशंसा कर देता है तो मान हो जाता है। दोनों प्रकार के परिणाम अज्ञान भाव को प्रदर्शित करते हैं, आत्म बल की हीनता को प्रकट करते हैं।

जिस प्रकार जिनका शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर होता है उन्हें ठण्ड गरम दोनों हवायें परेशान करती हैं। गर्म हवा में उन्हें लू लग जाती है और ठण्डी हवा से जुकाम हो जाता है। उसी प्रकार जिनका आत्मिक स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है उन्हें निन्दा और प्रशंसा दोनों ही परेशान करते हैं। निन्दा की गर्म हवा लगने से उन्हें क्रोध की लू लग जाती है और प्रशंसा की ठण्डी हवा लगने से मान का जुकाम हो जाता है। निन्दा शत्रु करते हैं और प्रशंसा मित्र दोनों के प्रति साम्यभाव रखना रागद्वेष नहीं करना मार्दव भाव का प्रतीक है। मान अग्नि है और मार्दव शीतल जल से भरा सरोवर। मान एक भयंकर विष है, जहर है। मान मीठा जहर है और नम्रता ज्ञानोदय का प्रभात। मार्दव आत्मोन्नति का आधार है। मार्दव के बिना मोक्षमार्ग में गति अशक्य है। यथा मोटर गाड़ी में पेट्रोल भी है, इंजन भी है, ड्राइवर भी अनुभवी है किन्तु गाड़ी के स्विच का सम्बन्ध बैटरी से नहीं है तो प्रयत्न करने पर भी गाड़ी नहीं चलेगी, इसी प्रकार समस्त धार्मिक क्रिया काण्डों को विधिवत् करते हुए भी यदि जीवन रूपी गाड़ी का मार्दवगुण के साथ सम्बन्ध नहीं है तो यह गाड़ी भी मोक्ष मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकती है।

पर आज हमारी दशा कुछ विपरीत है। हम सुशिक्षित होकर भी मार्दव को भूलकर मान से ही प्यार करते हैं। मानपात्र सबके घरों में टंगे हुए मिल जावेंगे किसी के घर पर क्रोध पत्र नहीं

मिलेगा। क्रोध पत्र कोई किसी को देता भी नहीं है और दिया भी तो हम लेना पसन्द नहीं करेंगे। पर लोग मानपात्र बड़ी शान से लेते हैं और उसे बड़े प्यार से घरों में लगाते हैं। मानी मान से निमित्तों को रखना चाहता है। पर ध्यान रखें कि मानी को मान नहीं मिलता, मिल भी गया तो स्थाई नहीं होता है क्योंकि श्रेष्ठत्व के बिना ज्येष्ठत्व प्राप्त होता नहीं। कहा भी है-

न हि ज्येष्ठस्य ज्येष्ठत्वं, गुणैर्ज्येष्ठत्वमुच्यते।
केतकी गुरुपत्रेभ्यो लघुपत्रस्य गौरवम्॥

देश, राष्ट्र वा समाज में भी “अधिकार” सभी चाहते हैं पर कर्तव्य के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते हैं। कर्तव्य करना नहीं चाहते। इसीसे पतन के गड्ढे भी उन्हें सर्वत्र तैयार मिलते हैं। अस्तु जो सर्वांगीण विकास की कामना करते हैं। अधिकार के साथ कर्तव्य के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए। पर कर्तव्य निष्ठता विनय से आती है। भगवती आराधना में तो विनय को मोक्ष का द्वार भी कहा है-

‘विणओ मोक्खद्वारं विणयादो संजमो तवोणाणम्।’

विनय भाव के नलस्वरूप ही जीव चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कुल में उत्पन्न होता है और देवेन्द्र, चक्रवर्ती, मण्डलीक राजा आदि के सुख को प्राप्त करते हुए क्रमशः मुनि होकर मुक्ति को भी पा लेता है।

जीवा जिनवर जो मुणहि, जिनवर जीवमुणेहि।
सो समभाव परट्ठयउ, लहु णिव्वाण लहेइ॥

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा प्रत्येक जीव को जिनवर को जीव समझकर साम्य भाव को प्राप्त हुआ पुरुष सभी जीवों का सम्मान करता है और वह शीघ्र निर्वाणपद को पा लेता है।

एक बार आचार्य शांतिसागर जी महाराज के पास आठ वर्ष की बालिका आई तो उसको देखकर आचार्य श्री पूछने लगे कि “आप कब आई और कहाँ से आई है। छोटी बालिका के प्रति “आप” सम्बोधन करना, यह कुछ लोगों के लिए चर्चा का विषय हो गया और एक व्यक्ति महाराज श्री के पास आकर पूछने भी लगा कि आपने छोटी सी लड़की के लिए ‘आप’ शब्द का प्रयोग क्यों किया? तब आचार्य श्री बोले-न मालूम यह आत्मा कितनी बार मेरी माँ हुई और आगे भी हो सकती है। पुनः यह भी सम्भव है कि यह बालिका मुझसे पहले मोक्ष चली जावे अस्तु मैंने ‘आप’ सम्बोधन किया है। दूसरा कारण यह है कि हमारे श्रेष्ठ शब्दों को सुनकर यह भी दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करना सीखेगी। सबसे ‘आप’ कहकर बोलेगी और इसका व्यवहार विनम्र होगा अतएव मृदु वचनों का प्रयोग करना हमारा धर्म है।

नीतिकार लिखते हैं-

“मार्दवेना*पि सि)यन्ति कार्याणि सुगुरुण्यपि।
यतो जलेनभिद्यन्ते पर्वता अपि निष्ठुराः॥”

मार्दव के द्वारा अति कठिन कार्य भी सरलता से सि) हो जाते हैं। अति कठोर विशाल पर्वत भी जल प्रवाह के द्वारा भेद दिये जाते हैं अर्थात् जल प्रवाह तरल मृदु होकर भी पर्वतों को छिन्न-भिन्न कर देता है। आंधी आने पर छोटी-छोटी दूबें झुककर अपनी रक्षा कर लेती है पर जो झुकते नहीं ऐसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। अतः हमें मान का परिहार कर मार्दव को जीवन में लाना चाहिए। जिस प्रकार चन्द्रक बेध को भेदने वाला पुरुष अपना लक्ष्य उस बेध्य पर रखता है उसी प्रकार दुष्ट कर्म को बेधने में संलग्न पुरुष अपना लक्ष्य मार्दव पर रखता है मार्दव धर्म को अपनाकर श्रावक भी, सप्त धातु से रहित उत्तम देव पर्याय को

प्राप्त कर क्रमशः मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जैसे अणु अल्प और आकाश से महत् कोई द्रव्य नहीं है उसी प्रकार मार्दव के समान अन्य कोई महान् गुण नहीं क्योंकि जहाँ मार्दव है वहीं पर गुणों का समागम सम्भव है। जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक के अन्दर पर्वतों में मेरु उच्च है, उसी प्रकार सभी गुणों में मार्दव गुण श्रेष्ठ है।

जहाँ मार्दव है वहीं साधुता व सज्जनता है, मानवता है। मार्दव के बिना साधु भी असाधु के समान है। मार्दव से विभूषित व्यक्ति मूर्ख होने पर भी ज्ञानी है पण्डित है ज्ञानी है। मार्दव धर्म को अपना कर ही भव्य जीव स्थाई सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

विनय ब्रह्मार्दवऋ का लक्षण विविधशास्त्रों में

सर्वार्थसि) में -- “पूज्येषु आदरो विनयः” पूज्य पुरुषों के प्रति आदर भाव होना विनय है। कषाय पाहुड में -- “गुणाधिकेषु नीचैर्वृत्ति-विनयः” ऐसा बताया है। जो अपने से गुणों में बड़े हैं उनके प्रति विनम्र व्यवहार रखना विनय है। भगवती आराधना में- “ज्ञान दर्शन चारित्र तपसा-मतीचारा अशुभक्रियाः तासामपोहः विनयः।” अशुभ क्रियायें ज्ञान, दर्शन, चारित्र वा तप के अतिचार है, इनका हटाना विनय है। “कषायेन्द्रिय विनयनं विनयः” कषायों और इन्द्रियों को नम्र करना विनय है। सागार धर्मांमृत में कहा है-मुमुक्षुजन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्ज्ञान, वा सम्यक्तप के दोष दूर करने के लिए जो कुछ प्रयत्न करते हैं, उसको विनय कहते हैं और इस प्रयत्न में शक्ति को न छिपाकर यथाशक्ति उन्हें करते रहना विनयाचार है। विनय के 5 भेद बताये गये हैं। तत्त्व विचारसार में आचार्य वसुनन्दी ने कहा है-

दशण णाण चारित्ते तवोवयारं पि पंच विह विणओ।

पंचम गड़ गमणट्ठं, कायव्वो देशविरएण॥

1. दर्शन विनय 2. ज्ञान विनय 3. चारित्र्य विनय 4. तप विनय 5. उपचार विनय को प्राप्त करके देशव्रती पंचम गति को प्राप्त करता है।

ज्ञान विनय के आठ भेद हैं-

काले विणये उवधाणे बहुमाणे तहेवाणिण्हवणे।

वज्जणं अत्थ तदुभय विणओ णाणम्मि अट्ठविहो।मूलाचार॥

1. कालाचार-योग्य समय में ज्ञान की आराधना करना- प्रातःकाल मध्याह्नकाल सायंकाल-सामायिक के समय तथा भूकम्प, सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण, उल्कापात, वज्रपात आदि के समय ज्ञान की आराधना अर्थात् सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। 2. विनयाचार-शास्त्रों का विनय करते हुए अध्ययन करना चाहिए। 3. उपधानाचार-एकाग्रता-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए। 4. बहुमानाचार-बहुमान पूर्वक अर्थात् आचार्य उपाध्याय वा सभी गुरुजनों की यथायोग्य विनय करते हुए जिनवाणी को ऊँचा विराजमानकर श्रुत भक्ति बोलकर स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिए। 5. अनिहकवाचार-दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु के नाम को नहीं छिपाना चाहिए। 6. व्यंजनाचार-शब्दों का स्पष्ट और निर्दोष उच्चारण पूर्वक पाठ करना चाहिए। 7. अर्थाचार-शब्द रूप पदों के वाच्यभूत अर्थ को, अनेकान्त दृष्टि से सम्यक् प्रकार समझकर ग्रहण करना चाहिए। 8. तदुभयाचार-शब्दों के शुद्ध उच्चारण के साथ अर्थ भी आगमानुकूल ही होना चाहिए अनेकान्त दृष्टि को रखते हुए स्वाध्याय करना चाहिए।

उस प्रकार से ही स्वाध्याय करना ज्ञान विनय है। इसी प्रकार दर्शन विनय भी मार्दव गुण को वर्धित करता है। आठ

अंग सहित सम्यग्दर्शन की पूजा अभ्यर्चना करना तथा देव शारु गुरु पर दृढ़ श्रद्धा करना दर्शन विनय है। इसी प्रकार चारित्र्य विनय भी मार्दव गुण को पुष्ट करता है।

13 प्रकार के चारित्र्य की पूजा अभ्यर्चना करना, इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को रोकना, कषायों का दमन करना चारित्र्य विनय है। इसी प्रकार

तप विनय भी मार्दव धर्म को जीवन में लाता है। 12 प्रकार के तपों की पूजा करना और यथाशक्ति तप करना-इच्छा निरोध का अभ्यास करना तप विनय है। इसी प्रकार --उपचार विनय भी मार्दव धर्म को पुष्पित पल्लवित करता है।-

गुरु को देखकर आदर से उठना, भक्ति से नमस्कार करना आदि उपचार विनय है। ऐसे विनय गुण की प्राप्ति के लिए उसे प्रतिपक्षी मान का-आठ प्रकार के मद का त्याग परम आवश्यक है। मद के आठ भेद इस प्रकार हैं-

ज्ञानं पूजां कुलं जाति बलमृतिं तपोवपुः।

अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहर्गतस्मयाः॥

1. ज्ञानमद-इन्द्रिय जनित ज्ञान को प्राप्त कर गर्वित होने को ज्ञानमद कहते हैं। इन्द्रिय जन्य ज्ञान क्षणध्वंसी है, चिर स्थाई नहीं है। क्षायोपशमिक ज्ञान, ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है, ज्ञान का गर्व करने से ज्ञान क्षीण होता है तथा वह सदा अज्ञानी बना रहता है।

एक पुरुष को ज्ञान का महान गर्व था। वह ज्ञानमद के कारण अपने मन में समझता था कि समस्त विश्व में 90 प्रतिशत बुद्धि मेरे पास है तथा 10 प्रतिशत समस्त जनों में। इस प्रकार वह समस्त पुरुषों का उपहास किया करता था। चारित्र्यान् की भी

कदापि वह विनय भक्ति नहीं करता था। एक दिन उसके मस्तक में असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई। विविध उपचार करने पर भी उसकी शिरोवेदना शान्त नहीं हो सकी, पीड़ा से उसकी बुद्धि भी नष्ट हो गई, मूर्च्छित होकर अशुभध्यान पूर्वक वह मृत्यु को प्राप्त कर दुर्गति में गया। अतः ज्ञानमद की दुर्गति का कारण जानकर प्रत्येक प्राणी को मार्दव धर्म का पालन करना चाहिये। मार्दव धर्म का धारी अल्प समय में केवलज्ञानी बन जाता है। कहा भी है-

“विनयेन सुदमदीदं यदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि पर भवे केवलणाणं च आवहदि।”

विनय पूर्वक पढ़ी हुई विद्या यदि क्षयोपशम की हीनता से धारण शक्ति की कमी से विस्मृत भी हो गई तो भी विषु) संस्कारों के बल से, मार्दव परिणामों से पर भव में केवलज्ञान की सिद्धि) हो जाती है। अतः मार्दव भाव ज्ञान वृद्धि) का प्रमुख कारण है।

2. कुल एवं जाति का मद-उत्तम कुल एवं जाति को प्राप्त करके मद करना कुल मद एवं जातिमद है। कुल का मद जिसके है वह पापास्त्र को करने वाला नीच गोत्र का बन्ध कर लेता है। मार्दवगुण की रक्षा ही उत्तम कुल वालों को प्रधान कर्तव्य है अहंकार नहीं। अतः अहंकार को छोड़कर ऊँकार को अपनाना चाहिए।

3. ऐश्वर्य मद- धन, सम्पत्ति एवं प्रभुता को पाकर अभिमान करना ऐश्वर्य मद है पापोदय से धन सम्पत्ति जल के बुलबुले के समान क्षण भर में नष्ट हो जाती है। अतः यदि पूर्व पुण्योदय से ऐश्वर्य मिला हो तो स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए, धन का सदुपयोग करना ही बुद्धिमत्ता है। ज्ञानी कभी धन का मद नहीं

करता है।” बल्कि विनम्र होता है।

4. पूजा प्रतिष्ठा का मद-अपनी यश कीर्ति को सुनकर अहंकार करना पूजा का मद है। ज्ञानी यश और निन्दा दोनों को कर्मोदयजन्य जान कर साम्य भाव से रहता है। अहंकार नहीं करता है। सभी अपनत्व भाव रखता है।

5. ;रि) मद-;रि) को प्राप्त कर अहंकार से भर जाना ;रि) का मद है। यह मार्दव गुण का घातक है।

6. बल मद-शक्तिशाली शरीर को प्राप्त कर बल का अहंकार करना बलमद है। यह मार्दव को निर्बल कर देता है।

7. तप मद-अनशन ऊनोदरादि तप करते हुए अहंकार करना कि मेरे समान उत्कृष्ट तपस्वी कोई नहीं तो वह तपमद है जो मार्दव गुण को नष्ट करता है।

8. वपु बद्धशरीरऋ मद-सुन्दर रूपवान शरीर को पाकर अहंकार करना, रूप मद है। यह मार्दव को धूमिल कर देता है।

उपर्युक्त आठ मदों से जिसका चित्त मलिन है उसके मार्दव धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, मान कषाय आत्म, गुणों का घातक शत्रु है।

मानी के जीवन में अनायास मरुस्थल आ जाता है, गुणांकुर नहीं जमते वस्तुतः कषाय रूप बालू के कणों में मधुर रसाल गुण कैसे गल सकते हैं? अर्थात् नहीं गलते। अहंकार बोझ है, भारीपन है, यही कारण है कि वह यशोपताका को ऊपर नहीं उठने देता है। जीवन में समुज्ज्वल पहलुओं को धुंधला बना देता है। मानी का विवेक सोता है। प्रमाद जागृत होता है। रावण का यही हाल हुआ। कंस की यही दुर्दशा हुई अर्ककीर्ति अहंकाराविष्ट होकर जयकुमार

से परास्त हुआ। मनुष्य का अहंकार ही उसकी प्रगति में सबसे अधिक बाधक बनता है। जिस प्रकार लंगर में बँधी हुई नाव आगे नहीं बढ़ सकती है उसी प्रकार अहंकारी की आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती है।

दृष्टान्त-भूले भटके कुछ युवक नदी तट पर आ बैठे। उन्होंने नाव चलाना शुरू कर दिया। रात भर बिना कुछ सोचे नाव चलाते रहे, पर सुबह देखा तो पाया कि वे उसी घाट पर हैं, जहाँ से नाव पर चढ़े थे। युवकों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सारी रात हम नाव चलाते रहे फिर भी हम अपनी मंजिल तक क्यों नहीं पहुँच पाये? वहाँ पास में ही एक मल्लाह खड़ा हुआ था, वह उनसे बोला-बाबूजी! नाव कैसे आगे बढ़े, वह तो लंगर से बँधी है, ठीक यही हाल अहंकार से भरे हुए व्यक्तियों का है, वह दौड़ धूप करता है, धर्म कार्यों को भी करता है किन्तु अहंकार के लंगर के साथ बँधे रहने के कारण प्रगति नहीं कर पाता है।

इस भारत भूमि के अन्दर दो भूमियाँ हुईं जो स्वर्ण नगरी कही गईं। दोनों ही स्वर्ण की नगरी मान के कारण जल कर राख हो गईं। जब रावण का जन्म हुआ। रावण बाल्यावस्था से ही बहुत मानी ब्रह्ममण्डीकृ था। रावण का यही मान ब्रह्ममण्डकृ अन्त में विनाश का कारण बना, जिससे सोने की लंका जलकर राख हो गई थी। दूसरी स्वर्ण नगरी द्वारिका भी मान के अहंकार के प्रतिशोध की ज्वाला में जलकर राख हुई थी। सारांश यह है कि मान व्यक्ति को मिट्टी में मिला देता है। महाभारत का यु) माऽ एक मान के कारण ही हुआ। जब दुर्योधन पाण्डवों के पास गये, तो पाण्डवों के महल में कुण्ड था जो इस प्रकार बना था कि जहाँ पानी भरा था वहाँ भूमि वत और जहाँ भूमि थी वहाँ जलवत् नजर आता था उसने भरे हुए पानी को जमीन समझा और उसमें

गिर गया। तब द्रौपदी ने उपहास करते हुए कह दिया कि “अन्धों के अन्धो ही होते हैं।” इस एक कटाक्ष के तीर ने दुर्योधन के मान को महाभारत को विशाल नरसंहार की साक्षात् घटना बना दिया था। मान मार्दव धर्म को मलिन कराने वाला है। मान अहंकार घमण्ड, अहं, मैं की झूठ वृत्ति को दलित करने वाला मार्दव ताम्र है। एक साधु से एक व्यक्ति ने पूछा नरक कौन जाता है? साधु ने कहा-कौन पूछ रहा है? व्यक्ति ने अकड़कर कहा, मैं पूछ रहा हूँ तो साधु ने कहा बस “मैं” ही तो नरक जाता है। बकरा मैं-मैं करता है, वह उसके पूर्व संस्कार है। मैं की भूमिका कष्ट में ले जाती है।

बकरा मैं मैं बोलकर अपनी खाल खिचाया।

मैना मैं ना बोलकर दूध भात ग्ल खाया।

मान का एक दृष्टान्त आता है कि एक सेठजी थे जो कि सन्तान प्राप्ति के लिए भक्तामर काव्य आदि पढ़ते। उसे एक बार पुत्र की प्राप्ति हुई। सेठ उसे खूब आदर देता लाड़ प्यार से रखते जिससे वह मानी हो गई। युवा होने पर उसकी शादी कर दी गई। वह ससुराल में सभी को नीचा दिखाना चाहती थी। एक बार पति को नीचा दिखाने की सोची। उसने बहाना करना शुरू कर दिया, कभी पेट दुखता, कभी सिर दुखता, कभी कुछ दर्द रहता आदि। एक बार उसने पति से कहा-कि मुझे रात में स्वप्न आया है कि “मैं तुम्हारी माँ ब्रह्मासूत्र का सुबह-सुबह मुड़ा हुआ सिर एवं मुँह काला देखूँ तो ठीक हो जाऊँगी।”

पति भी चालाक था। पति उसकी चाल समझ गया। पति ने पत्नी के माँ-बाप को खत (स्मजजमत) लिख दिया कि आपकी बेटी का स्वास्थ्य खराब है, आदि। पत्नी की माँ को पऽ मिला तो

मोह के कारण व्याकुल हो उठी और उसने सूचना कर दी बेटी तुम चिन्ता नहीं करना। हम ऐसा करके आ जाएंगे इसके लिए दिन भी निश्चित हो गया। अमावस्या को द्धपत्नी कीरू माँ सिर मुढ़ाकर आ गई। उसने सोचा कि सासूजी आई है। दरवाजा खोलते हुए बोली कि “देखो वीर वाणी के चाले सिर मुढ़े और मुँह काले” पति उस बात को सुन रहा था। अतः पति भी बोल पड़ा कि “देखो यह पुरुषन की नेरी अम्मा तेरी है या मेरी”।

जैसे ही पत्नी ने अपनी माँ को देखा, शर्म से तथा मान के कारण कभी लज्जित हुई और अपनी गलती का प्रायश्चित्त किया।

शायद मान इस जीव को जन्म से ही होता है। बालक का जन्म होते ही वह रोता है, और उठा लेने पर वह शान्त द्धचुपकृत हो जाता है। छोटे से बालक को भी मान हुआ करता है चारों गतियों में से मान सबसे ज्यादा मनुष्य गति में होता है। मान झुकने नहीं देता। झुकता वहीं है जिसमें जान है, अक्कड़पन तो मुर्दे की पहचान है।

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थी, सुनीति और सुरूचि। दोनों से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुए थे। ध्रुव तथा उत्तम। राजा छोटी रानी तथा उसके पुत्र को विशेष प्रेम करता था। एक बार राजा ध्रुव को गोद में लिये था तो बालक उत्तम ने उसे खींचकर अलग कर दिया अर्थात् बालकों को मान हुआ करता है। जब तक जीवन में मान है, तब तक व्यक्ति झुक नहीं सकता। अर्थात् मान के कारण व्यक्ति मृदुता, कोमलता, सहजता को प्राप्त नहीं कर पायेगा।

पत्थर जो रखा अहं का, क्या करें गलता नहीं।
सबका पता मिलता पर, स्वयं का पता मिलता नहीं॥
देखते ही देखते ढल न जाये जीवन की शाम।

सबका पता तो मिलता, स्वयं का पता मिलता नहीं॥

मान का अर्थ बहुत छोटे शब्दों में मैं और मेरा है। जहाँ मैं और मेरा होगा वहीं तो मान होगा। मान में अकड़ वृक्ष घनघोर हवा एवं झंझाबात आने पर समूल नष्ट हो जाते हैं, जबकि मृदु घास अपने को सरलता सहजता से झुका लेती है गलतः अपने को बचा लेती है। बौ) का जब समाधिमरण चल रहा था तब उनके शिष्यों ने कहा-भन्ते! हमारे लिए अन्तिम उपदेश दीजिए तब बौ) ने अपना मुँह खोलकर जीभ दिखा दी और चुप हो गये। शिष्यों ने पुनः उपदेश के लिए निवेदन किया तब बौ) ने कहा मैंने उत्तर दे दिया, मैंने उपदेश दे दिया। शिष्यों ने कहा-आपने मुँह खोलकर जीभ दिखाई थी उपदेश तो नहीं दिया तब बौ) ने कहा-यही तो श्रेष्ठ उपदेश है। शिष्य नहीं समझे तब उन्होंने कहा बताईये जन्म होते ही पहले जीभ आती है या दाँत? शिष्यों ने कहा जीभ। पुनः पूछा पहले जाता कौन है जीभ या दाँत। शिष्यों ने उत्तर दिया-दाँत पहले जाते हैं तब बौ) ने कहा दाँत बाद में आते हैं और पहले चले जाते हैं। इसका कारण कठोरता है और जीभ पहले आती है अन्ततः रहती है इसका कारण मृदुभाव है। दाँत कठोर होने से मांस चबाने का काम करते हैं और जीभ मृदु होने से उसका स्वाद ग्रहण करती है। इससे सि) है कठोरता हमेशा घातक है।

एक बार एक सि) पुरुष था। वह अधिकतर जंगल में ही रहा करता था। नगर में तो कभी-कभार ही आता था। कन्द-मूल, ग्ल खाकर भगवान का भजन किया करता। उसे पीतल से सोना बनाने की विद्या आती थी, लेकिन वह विद्या का उपयोग अपने लिए कभी नहीं करता था। दीन-दुखियों के लिए अवश्य समय-समय पर थोड़ा बहुत उपयोग कर लेता था।

अपने यहाँ नागार्जुन नामक एक वैद्य ने ऐसा कहा था

कि-रस सि) से स्वर्ण बन सकता है। उन्होंने अपनी इस विद्या द्वारा सारे जगत से दारिद्र्य हटाने की बात कही थी। उनका वचन था-‘सि) रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यगमं जगत्’

एक दिन जब वह नकीर नगर में आया हुआ था, तो एक बहुत ही दीन-दारिद्र्य ब्राह्मण उसके पास आया और विनीत स्वर में बोला “मैं बहुत दुखी हूँ। मेरे एक लड़की है उसकी उम्र कहीं हो गई, लेकिन मैं अब तक उसका विवाह नहीं कर सका हूँ। मैं तो दो जून का खाना ही बड़ी मुश्किल से जुटा पाता हूँ, तो विवाह कैसे हो? मैं देखता हूँ आप स्वयं भिक्षाटन करके खाते हैं, किसी प्रकार का परिग्रह भी नहीं रखते। अतः आपसे आर्थिक सहायता की आशा तो मैं नहीं कर सकता, पर आपके चेहरे पर तेज देखकर मुझे विश्वास होता है कि आप मुझे कोई युक्ति अवश्य बता देंगे।”

नकीर को विश्वास हो गया कि आदमी सुपात्र और सच्चा है, इसलिए उसने उस ब्राह्मण से कहा-“तुम सायंकाल मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हें युक्ति क्या बताऊँ, तुम्हारे लिए पूरी व्यवस्था ही कर दूंगा।”

ब्राह्मण अपने घर चला गया और इधर नकीर बाबा नगर के बाहर जाकर अपने एक पीतल के लोटे को, सोने का बनाकर ले आया।

सायंकाल जब वह ब्राह्मण उसके पास आया, तो उसने लोटा देते हुए कहा, “जा इसे बेचकर अपनी कन्या का विवाह कोई सुपात्र वर देखकर अच्छी तरह कर दे।”

ब्राह्मण तो कृतकृत्य हो गया।

जब वह लोटा लेकर बाजार में बेचने निकला, तो एक

दुकानदार ने उसे पकड़ लिया और बोला, “यह सोने का लोटा तुम्हारे पास कहाँ से आया? जरूर यह राजा का होगा। तुम या तो इसे चोरी करके लाये हो या तुमने किसी चोर से खरीदा है-” ऐसा कहकर वह उसे राजा के पास ले गया।

राजा ने लोटा देखकर कहा, “यह लोटा तो मेरा नहीं है, लेकिन इस ब्राह्मण के पास कहाँ से आया?”

ब्राह्मण से पूछने पर उसने सारी बात सही-सही बता दी।

राजा ने ब्राह्मण को तो लोटा सहित मुक्त कर दिया, पर उसने अपने मन में तय किया कि उस महात्मा से मिलना चाहिए। हो-न-हो, सि) बाबा के पास कोई चमत्कारी विद्या है। किसी तरह उस नकीर बाबा से यह विद्या अपने को सीखनी चाहिए।

राजा ने अपने आदमियों को भेजकर उस सि) बाबा का पता लगाकर दरबार में लाने को कहा। जब राजा का आदमी उस महात्मा के पास पहुँचा तो उन्होंने आने से इन्कार कर दिया। वे बोले-“मेरा राजा से क्या लेना-देना? मैं किसी के यहाँ क्यों जाने लगा?”

आदमी ने आकर सि) महात्मा की कही हुई बात राजाजी को बता दी। राजा के ऊपर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा और उसको विश्वास हो गया कि यह महात्मा पहुँचा हुआ तो है ही, निस्पृह भी खूब है। यह सोचकर राजा स्वयं उसके पास गया, क्योंकि उसके सिर पर तो लोभ सवार था।

राजा ने जाकर महात्मा को प्रणाम किया और बाबा से ब्राह्मण और उसके स्वर्ण लोटे की बात कही, साथ ही बड़े विनम्र शब्दों से वह विद्या सीखने के लिए प्रार्थना की।

सिर्फ दीन-दुखियों के लिए उनकी सहायतार्थ चमत्कारिक विद्या का उपयोग करने वाले उस नकीर बाबा की खुशामद की। उससे यह भी कहा, “देखो, यह विद्या तो राजा को ही शोभा दे सकती है, उसके ही काम आ सकती है, इस विद्या से सारे राज्य में खुशहाली छा जायेगी और कोई भी दीन-दरिद्री नहीं रहेगा। नकीर लोगों के यह विद्या किस काम की।”

लेकिन नकीर जानता था कि राजा के पास जितना ही अर्थ होगा, उतना ही वह अनर्थकारी होगा, अतः वह उसे विद्या सिखाने को राजी नहीं हुआ।

अब तो राजा का सोया हुआ अहम् जागा और नकीर से कहा, “ऐ नकीर, राजा के सामने तेरी ‘ना-नक्कड़’ नहीं चलेगी। राजी-राजी बता दे तो अच्छी बात, बरना व्यर्थ मैं तुझे अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।”

नकीर तो आखिर पहुँचा हुआ नकीर था। उसे इस तरह डरा-धमकाकर हराया थोड़े न जा सकता था। उसने राजा से कहा, “तेरी इच्छा हो-सो कर, मैं तो विद्या सिखाने से रहा।”

नकीर की यह बात सुनकर राजा को बहुत क्रोध आया और उसने चाहा कि उस नकीर को उसी वक्त जमी में जिन्दा गड़वा दे, लेकिन स्वर्ण बनाने की विद्या सीखने का लोभ अब भी उसके मन में था, इसलिए उसने ऐसा नहीं किया। फिर वह नकीर से बोला, “आज से पन्द्रह दिन के भीतर-भीतर या तो तुम मुझे यह विद्या सिखा दो, नहीं तो पन्द्रहवें दिन तुम्हें गँसी दे दी जायेगी।”

नकीर के पास तो अब भी वही जवाब था।

राजा बड़े असमंजस में पड़ गया और तय नहीं कर सका कि अब उसे क्या करना चाहिए। उसे तो किसी तरह से विद्या

सीखनी थी। नकीर को मारने से तो विद्या आने से रही। अतः वह रोज एक आदमी उस नकीर को समझाने के लिए भेजने लगा, लेकिन नकीर के पास तो वही रटा-रटाया जवाब था।

इस तरह जब सात दिन बीत गये तब राजा को विश्वास हो गया कि यों काम बनने वाला नहीं है। अतः उसने दूसरी युक्ति सोची और उसके अनुसार वह भेष बदलकर नकीर के पास गया और शिष्य के रूप में उनकी तन-मन से सेवा करने लगा। ऐसा करते-करते एक सप्ताह बीत गया।

राजा की सेवा से नकीर प्रसन्न हुआ और उसने सोचा-कल तो अपने को मरना है ही, अपनी विद्या इस शिष्य को सिखा दें।

उन्होंने वेष बदले हुए राजा को सुपात्र शिष्य समझ लिया और उसे बुलाकर कहा, “देख, मैं तो कल मरने वाला हूँ, लेकिन मरने से पहले तुझे एक विद्या सिखा देना चाहता हूँ किन्तु मुझे वचन दे कि तू इस विद्या उपयोग कभी अपने स्वार्थ के लिए नहीं करेगा।”

छद्मवेषी राजा ने वचन दे दिया और नकीर बाबा ने उसे पूरी करामती विद्या सिखा दी।

राजा अपने महल में लौट आया।

दूसरे दिन राजा का आदमी नकीर के पास गया और बोला “राजाजी के हुक्म के अनुसार आज तुम्हें गँसी दे दी जायेगी।”

नकीर ने कहा, “मैं तो इसके लिए तैयार ही बैठा हूँ।”

राजा के आदमी ने वापस आकर सारी हकीकत राजाजी से बयान कर दी। तब राजा स्वयं आया, लेकिन नकीर ने राज भेष

में उसे पहचाना नहीं कि पिछले सप्ताह इसने मुझसे शिष्य बनकर विद्या सीखी थी।

राजा ने कहा, “क्यों नकीर, बोल! विद्या सिखाना मंजूर करता हो तो तेरे प्राण अब भी बच सकते हैं, नहीं तो आज तुझे नौसी लगने वाली है, तैयार हो जा!”

नही! नकीर के पास तो वही उत्तर तैयार था।

राजा गर्वीली मुस्कान के साथ बोला, “तुम अपनी विद्या का इतना अभिमान करते हो और मानते हो कि दूसरा कोई इसे जानता ही नहीं, लेकिन मैं भी इस विद्या को जानता हूँ “ऐसा कहकर उसने पीतल के पात्र को सोने का बनाकर दिखा दिया।

नकीर हंसा ओर बोला, “राजा तुमने यह विद्या किसी को डरा-धमकाकर नहीं सीखी है। किसी-न-किसी की सेवा चाकरी करके ही सीखी होगी। ऐसी विद्या डराने धमकाने से नहीं सीखी जा सकती, यह तो विनय और सेवा से ही सीखी जा सकती है।”

हमें अपने मैं अपना, मेरेपन, घमण्ड को समाप्त करता है जीवन में मृदुता, कोमलता, सहजता को अपनाना है। ताकि मार्दव धर्म की जीवन प्रवृत्ति आवे।

कुम्हार का आवा जिस प्रकार धधकता रहता है, उसी प्रकार अहंकार का विषयानल भी धधकता रहता है। उसको शान्त करने के लिए मार्दव रूपी जलप्रवाह दमकल चाहिए। स्याही की एक बूँद भी सुन्दर से सुन्दर चित्र को गन्दा या भद्दा बना देती है किन्तु उस बूँद का सदुपयोग किसी महापुरुष का निर्मल चरित्र भी अंकित कर सकता है। इसी प्रकार विद्या, बुद्धि आदि पवित्र गुण भी अहंकार की स्याही से मलिन होकर कलंक स्वरूप हो जाते हैं पर मार्दव के द्वारा-सदुपयोग होने पर वही विद्या आत्म गुणों को

प्रकाशित करने वाली बन जाती है।

अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि मार्दव साक्षात् मुक्ति का द्वार है ऐसे मार्दव गुण की अर्चना-अर्घावतरण करते हुए हम सभी नव बार एकाग्रता से जप करेंगे-

रहते हैं मान में, खाली, श्रान में,
ज्ञान उन प्राणियों के सिर पै को भार है।
जाति को मान करें कुल को सम्मान वरें,
पूजा प्रतिष्ठा औ बल का न पार है॥
सुन्दर शरीर को तप की तासीर को,
श्रियाँ भी जिनने पाई अपार है।
अष्ट मद में “विशद” रहते चकचूर जो,
मान सिला तोड़वे को मार्दव कुठार है॥

हर सुबह अपने में प्रकाश लेके आती है।
साथ में अपूर्व सा सुवास लेके आती है।
विनय भाव आ गया जिसके जीवन प्रांगण में।
उसकी जिन्दगी के लिए मधुमास लेके आती है॥

इंसान के पुरुषार्थ से पत्थर भी पिघल सकता है।
ऊँचाई से गिरने वाला इंसान भी सम्हल सकता है॥
परमात्मा की भक्ति का जादू ही कुछ निराला है।
परमात्मा की विनय से जमीं पर भी स्वर्ग मिल सकता है॥

सूर्योदय होने पर कमल क्यों नहीं खिलेंगे।
बाती में तेल है तो दीप क्यों नहीं जलेंगे॥
हृदय में आस्था और विनय है आपके प्यारे भाई।
तो इंसान को पत्थर में भगवन क्यों नहीं मिलेंगे॥

हमने सब कुछ देख लिया इस झूठो जिन्दगानी का।
नहीं मिला ओर छोर कहीं जीवन की कहानी का॥
क्यों यह जिन्दगी पाकर गरूर करते हो मेरे मित्र।
कब समाप्त हो जाए यह नश्वर बबूला पानी का॥

ॐ ऋषिं श्री उत्तम मार्दव धर्मात्राय नमः

उत्तम आर्जव धर्म

1. सीधापन का नाम है आर्जव - तेरापन है टेढ़ापन
2. निस्पृहता का नाम है आर्जव - चाह है टेढ़ापन
3. सुयश का नाम है आर्जव - अपयश का घर है टेढ़ापन
4. आकाश की सीढ़ी है आर्जव - पाप का गर्त है टेढ़ापन
5. शिव का द्वार है आर्जव - नरक का द्वार है टेढ़ापन
6. धर्म वृक्ष सीचने को जल - शील वन जलाने को
है आर्जव आग है टेढ़ापन
7. मयूर का नाम है आर्जव - नागिन है टेढ़ापन
8. विद्या मंत्र का नाम है आर्जव - डाड़न है टेढ़ापन
9. योग निरोध है आर्जव - कर्म योग है टेढ़ापन

10. ;जुता का नाम है आर्जव - वक्रता है टेढ़ापन
11. सरलता का नाम है आर्जव - कुटिलता है टेढ़ापन
12. मानवता का नाम है आर्जव - पशुता है टेढ़ापन
13. सज्जनता है आर्जव - दुर्जनता है टेढ़ापन
14. निर्विकारता है आर्जव - विकारता है टेढ़ापन
15. अचौर्य का नाम है आर्जव - चौर्य है टेढ़ापन
16. बिल का नाम है आर्जव - सर्प है टेढ़ापन
17. विश्वास का नाम है आर्जव - अविश्वास है टेढ़ापन
18. प्रशंसा का नाम है आर्जव - निन्दा है टेढ़ापन
19. शेर वृत्ति का नाम है आर्जव - बिल्ली वृत्ति है टेढ़ापन
20. ज्योति का नाम है आर्जव - बाती है टेढ़ापन
21. प्रकाश है आर्जव - धूप है मायाचारी

जो चिन्तेइ ण वंकाण कुणदि वंकां ण जंपए वंकां।

ण वि गोवदि णिय दोषं अज्जव धम्मो हवेतस्स॥ त. वि.सा.॥

जो साधक कुटिल चिंतवन नहीं करता, न कुटिल कार्य करता है न कुटिल वचन बोलता न ही अपने दोषों को छिपाता है उसे आर्जव धर्म होता है।

“;जोर्भावः आर्जवम्” ;जुता अर्थात् सरलता का नाम आर्जव है। आर्जव के साथ लगा उत्तम शब्द वीतरागता की सत्ता का सूचक है। आर्जव धर्म का विरोधी माया कषाय है। इसके कारण आत्मा में स्वभावगत सरलता नहीं रह पाती और मायाचारी का व्यवहार आ जाता है यद्यपि मायाचारी सरल नहीं है उसके मन-वचन-काय में एकरूपता नहीं आ पाती है। वह हर कार्य छल

कपट से करना [REDACTED] प्रकार से चिन्ता लगी रहती है विचार करना पड़ता है वह यह नहीं समझता कि एक बार छल प्रकट होने पर जीवन में कोई उसका विश्वास नहीं करता छल कभी-कभार ही फल होता है।

“मन काला तन ऊजरा या बगुला की टेक।
याते तो कागा भला, भीतर बाहर एक॥”

एक बार राम लक्ष्मण चलते हुए चम्पा नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक बगुले को धीरे-धीरे चलते हुए देखा तो कहा देखो लक्ष्मण, यह बगुला जीवों की रक्षा करते हुए तीरे-धीरे चल रहा है? उनकी बात एक मछली सुन रही थी तो वह बोली

बकः किं स्तूयते राम! येना*हं निष्कुलीकृतः।
सहवासी हि जानःति सहवासी विचेष्टितम्॥

सहवासी ही साथ रहने वालों की चेष्टा जान सकते हैं। हे राम! इस बगुले ने क्या किया? मुझसे पूछो इसने मेरे कुल को ही नष्ट कर दिया है अर्थात् यह ऊपर से स्नेह है किन्तु अन्दर से काला है स्नेह बगुले से कौआ भला है जो अन्दर बाहर एक सा दिखता है। हमें अपने अन्दर बैठे हुए कपट को समाप्त करना चाहिए।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥

जिनवाणी का दोहा भी स्पष्ट करता है कि जो कपट करते हैं मायाचारी करते हैं। उनके यहाँ पर लक्ष्मी का वास नहीं होता। जो सरल स्वभाव के होते हैं उनके घर बहुत से प्रकार की सम्पदा रहती है।

कपट छुपाए न छुपे, छुपे न मोटो भाग।
दाबी दूबी न रहे, रुई लपेटी आग॥

शक्ति की अपेक्षा माया के चार भेद हैं

वेणुवमूलेरब्भयसिगे गोमुत्तए य खोरप्पे।
सरिसी माया सारस तिरिय णरामर गईसु खिबदिजियं।

1. बांस की जड़ के समान माया 2. मेढ़े के सींग के समान माया 3. गोमूत्र के समान माया 4. खुरपे के समान माया।

1. जहाँ बांस की जड़ के समान जो माया है वहाँ अर्थात् उस परिणाम अवस्था में मात्र एक कृष्ण लेश्या ही होती है और यदि उसमें आयु बंध होवे तो नरकायु का ही बन्ध होता है।

2. मेढ़े के सींग के समान जो माया है उसमें 6 प्रकार की लेश्या संभव है और लेश्यानुसार किसी भी आयु का बन्ध हो सकता है।

3. गोमूत्र के समान जो माया है उसमें भी 6 लेश्या संभव है और लेश्यानुसार किसी भी आयु का बन्ध हो सकता है।

4. खुरपा के समान जो माया है वहाँ मात्र एक शुक्ल लेश्या ही होती है। उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट तथा अजघन्य और जघन्य की अपेक्षा प्रत्येक के चार-चार भेद हैं। आयु बन्ध मध्यम परिणामों से होता है। कषायों में सबसे उत्कृष्ट और सबसे जघन्य वाले भेद के होने पर उस अवस्था में आयु बन्ध की योग्यता का अभाव होने से आयु बन्ध नहीं होता है। अतः शुक्ल लेश्या के जघन्य भेद में आयु बन्ध की अयोग्यता है मध्यम भेदों में देवायु का बन्ध हो सकता है।

इन बन्धों को रोकने के लिए मायाचार प्रवृत्ति को सर्वतः छोड़ना ही होगा। जिस प्रकार आप धन अर्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं उसी प्रकार इन कषाय रूप शत्रुओं को जीतने के

लिए भी प्रयत्नशील होना ही चाहिए।

नयापेक्षा माया-व्यवहार नय की अपेक्षा मन, वचन, काय की कुटिलता माया है और निश्चयनय की अपेक्षा जिससे पाप रूप प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले वह सब मायारूप ही हैं। हमें निश्चय और व्यवहार दोनों को संभालना चाहिए।

यद्यपि उत्तम आर्जव धर्म का सब प्रकार से पालन बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी मुनि के ही सम्भव है। गृहस्थावस्था में सर्व देश उस माया से बचाव नहीं हो सकता है। यथा-एक बालक पिता के पास जाकर कहता है पिताजी! मुझे रुपये चाहिए, किसलिए? पिकचर देखूंगा। पिता ने कहा कि अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं। रुपये होते हुए भी नहीं है ऐसा कहना मायाचार है पर ऐसी माया, गृहस्थी में रहकर करनी ही पड़ती है। यहाँ कुमार से पुत्र का रक्षण करने का लक्ष्य होने से वह माया, उस पिता के लिए त्याज्य नहीं है। पर यथाशक्ति वैसी माया से बचते रहें जो अशान्ति और कलह को पैदा करने वाली है नरकादि दुर्गति का कारण है क्योंकि आदर्श श्रावक ही भविष्य में श्रेष्ठ साधु बन सकता है।

भगवती आराधना में माया के 5 भेद भी बताये गये हैं।

1. निकृति 2. उपधि 3. सातिप्रयोग 4. प्रणिधि 5. प्रतिकुंचना माया।

1. निकृति का अर्थ है ठगना। किसी की धन सम्पत्ति को अति कुशलतापूर्वक ले लेना निकृति है। यथा एक ब्राह्मण महाराज को दक्षिणा में सुन्दर गाय व बछिया मिली। तीन ठग उसके पीछे लग गये और बछड़े को कुत्ते का पिल्ला बताकर उससे छुड़वा लिया यही निकृति है।

2. उपधि-“सद्भावं प्रच्छाद्य धर्म व्याजेन सैन्यादि दोषे

प्रवृत्ति रूपधिसंज्ञिता माया निरूप्यते।” धर्म की आड़ में चोरी करके किसी की सम्पत्ति को हड़प लेना उपधि है। यथा-दृढ़सूर्य नामक चोरों का सरदार क्षुल्लक के वेष में जिनेन्द्र भक्त सेठ के चैत्यालय से बैदूर्यमणि के छत्र चुराकर भागा। उसने चोरी के उद्देश्य से क्षुल्लक का वेश धारण किया था। इस प्रकार की चोरी को ही उपधि कहा गया है।

3. प्रणिधि-असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाकर बेचना तथा तौल में कम ज्यादा कर देना प्रणिधि है।

4. सातिप्रयोग-अपने हाथ से निक्षिप्त धरोहर स्वरूप रखे गये पराये धन को भी छल से हड़प लेना सातिप्रयोग है।

5. प्रतिकुंचन माया-“आलोचना कुर्वतां दोष निगूहनं प्रतिकुंचन माया कथ्यते।” आलोचना करते हुए दोषों को छिपाकर आलोचना करना प्रतिकुंचन माया है।

उक्त प्रकार के कपट को धारण करने वाला उभय लोक में दुःखी रहता है। मायाचार रूप व्यवहार से जीव को तिर्यच गति में जन्म लेना पड़ता है। तिर्यच गति में छेदन, भेदन, ताड़न, मारन भार वहन आदि दुःख भोगने पड़ते हैं। जिस प्रकार आग की छोटी सी चिंगारी सारे घर को जलाकर भस्म कर देती है केवल घर को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण बस्ती को जलाकर भस्मसात् कर देती है। छोटे से बिच्छू का डंक सारे शरीर में जलन पैदा कर देता है उसी प्रकार माया का अल्पांश भी पुण्य कर्म को क्षण भर में नष्ट कर देता है।

माया करोति यो मूढ इन्द्रियादिक सेवनम्।
गुप्ते पापं स्वयं तस्य व्यक्तं भवति कुष्ठवत्॥

जो मूढ़ मनुष्य इन्द्रियादि विषयों के सेवन में मायाचारी

करता है उसका वह गुप्त पाप कुष्ठ रोग के समान स्वयं ही प्रकट हो जाता है।

दृष्टान्त-पत्तनपुर नगर के राजा पुष्पचूल थे। अपने मस्तक के स्फेद बालों को देखकर संसार के भोगों से विरक्त हो गये, जैनश्वरी दीक्षा ग्रहण करके घोर तपश्चरण करने लगे। उनकी रानी पुष्पदत्ता ने सोचा। जब पतिदेव ने दीक्षा ले ली तो मुझे भी दीक्षा ले लेनी चाहिए और उसने भी आर्यिका ब्रह्मिला के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली। परन्तु उसके हृदय में किंचित् मात् भी वैराग्य नहीं था। वह दिनभर ही अपने शरीर का ही श्रृंगार करती थी और शरीर पर सुगन्धित तेल लगाती थी। एक दिन आर्यिका ब्रह्मिला ने उससे कहा-“मेरे शरीर में स्वाभाविक सुगन्ध है, मैं तेल नहीं लगाती हूँ।” इसी मायाचार के कारण वह मरकर सेठ की दासी पुत्री हुई। उसके शरीर से दुर्गन्ध आती थी। ठीक ही है-जो अपने गुरु के साथ मायाचार करते हैं, उनकी ऐसी ही दशा होती है। माया शल्य हृदय में कील के समान चुभती रहती है।

जो व्यक्ति जैसे होते हैं, उन्हें सारा संसार वैसा ही तो दिखता है। जब तक कुटिलता रहती है, तब तक वह कुगति को प्राप्त करता है। एक कथानक आता है। एक बहुत बड़े सेठ थे, उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। वह धर्म कर्म भी किया करता था। उनकी एक पुत्री थी जो बड़ी सुन्दर थी, लेकिन एक आँख में कमी थी अर्थात् आँख नूटी थी। लड़की को काँच की आँख लगवाकर चश्मा लगा दिया था जिससे नूटी हुई आँख दिखाई न दे। सेठजी को शादी कराने में बड़ी परेशानियाँ होने लगी क्योंकि पुत्री बड़ी हो चुकी थी। एक बार उन्होंने अपने नाई को बुलवाया और कहा भैया हम तो बहुत परेशान हो चुके हैं अब तुम्हें जो कुछ चाहिए सो ले लो और मेरी बेटी के लिए अच्छा सा वर-घर ढूँढो। वह नाई भी बहुत सुन्दर था। हाँ करके अच्छे वस्त्र आदि पहनकर चल दिया और पहुँच गया कुछ दूर के शहर में एक सेठ के पास

एक पुत्र था। सेठजी से मुलाकात के बाद सारी की सारी चर्चा हो गई। सेठ ने जब पुत्री के गुण रूप के बारे में पूछा तो नाई ने कहा मेरे जैसी है ब्रूनाई की भी आँख नूटी थी, वह काना था वह नाई बहुत चालाक होता है। सेठ पुत्र दुकान पर बैठा किन्तु ग्राहक आने पर कोई वस्तु स्वयं उठाकर नहीं देता था हर वस्तु को उठाने के लिए नौकर को पुकारता इससे नाई को शक हो गया तो वह लड़के की चाल ढाल देखने के लिये रुक गया। सेठ ने कहा जाओ, तब नाई ने कहा यहाँ से जाने की इच्छा ही नहीं होती, आदि आदि बहाने बनाने लगा। सेठ ने लड़की के बारे में पूछा कि चतुरलक्ष्मी कैसी है तो नाई ने कहा अरे! आपके घर में आयेगी तो आप स्वयं जान लेंगे।

जब शाम को लड़का दुकान बन्द करके आया तो सेठ लड़के को तिपहिये की गाड़ी पर बिठाकर लाया। नाई ने देख लिया। सेठ ने नाई से कहा, बात समझालनी होगी। देखो लड़के का थोड़ा सा पैर खराब है, लेकिन शादी बनानी होगी। नाई बोला कि देखेंगे? तो सेठ ने नाई को मुद्राओं ब्रूनाई की थैली देते हुए कहा कि ये लो अब तो होगी?

नाई ने कहा हाँ और वापिस चला गया। शादी का दिन आया और धूमधाम से बारात आई, क्योंकि दोनों पार्टी टक्कर की थी। जब भांवर का समय आया तो कहा मामा लड़के को गोदी में लेकर अन्दर आता है एवं भांवर कराता है ऐसा खानदानी नियम है। जब भांवर होने लगी तो लड़की पक्ष की नाईन ने कहा “गढ़ जीत लिया मोरी काणी ने” अर्थात् मेरी कानी ने राज जीत लिया। तब लड़के पक्ष की नाईन भी बड़ी होशियार थी। वह बोली “वर ठाड़ होय जद जाणी मैं” अर्थात् दूल्हे को खड़ा कर दिखाओ तब हम जाने। बात खुल गई सेठजी ने नाई को आड़े हाथों लिया और कहा तूने मुझसे झूठ बोला नाई बोला कि मैंने बिल्कुल सच कहा था, उसने अपनी आँख से नकली आँख

निकालते हुए कहा मैंने आपसे कहा था बिल्कुल मेरे जैसी है। तब नाई ने कहा-मेरे भी एक आँख नहीं है और उसके भी नहीं है। सेठ ने कहा तुमने बताया सुलक्षणी है। नाई ने कहा था कि घर में आये तब देखना और नाई ने कहा था कि मेरे जैसा रिश्ता जोड़ने वाला कोई दूसरा नहीं मिलेगा। यह भी सत्य कहा सेठ ने अपना माथा ठोक लिया और शादी करके चला गया। सारांश है कि मायाचारी, तथा कपट हमें नये-नये संकटों तथा पापों की ओर ले जानेवाला होता है। कुछ लोग मनोरंजनवश या आदतवश भी छल करते रहते हैं ऐसे लोग आदतवश औरों को संकट में डाल देते हैं।

मायाचारी तथा कपट के सम्बन्ध में एक दृष्टान्त आता है कि एक चूहे के पीछे एक सर्प पड़ गया। चूहा आत्मरक्षा हेतु हंस के पास गया और बोला मुझे बचालो, हंस ने चूहे को अपने पंख में छुपा लिया। चूहे ने अन्दर ही अन्दर उसके पंख काट लिये। हंस को पता ही नहीं चला। इतने में एक शिकारी हंस को मारने आ गया। हंस ने कहा सर्प चला गया है तुम बाहर आ जाओ। वह बाहर नहीं आया हंस जैसे उड़ने को हुआ वह जमीन में गिर जाता और शिकारी के हाथों से मारा जाता है मायाचारी जीव धोखा देकर प्राण ले लेता है। जिसके मायाचार न हो तो विकल्पों का विराम होता है। कुटिलता न हो तो मन स्थिर रह सकता है। कुटिलता से कोई सिद्धि नहीं है, फिर भी मोह ऐसा अधम है कि यह जीव नाना अनुमान लगाया करता है और कपट करके किसी को छका दिया, दगा दिया तो उसमें वह अपनी बुद्धिमानि मानता है पर लोभ तो हम आपसे भी ज्यादा कर्मठ है। हम किसको दगा देते चले जायें। जो दूसरों को धोखा देते हैं वे खुद ठगाये जाते हैं। सरल पुरुष की तो कुटिल लोग भी सेवा किया करते हैं परन्तु कुटिल का सेवक लोक में कोई नहीं है।

कुटिल हृदय में धर्म का प्रवेश नहीं हो सकता किन्तु सरल हृदय वाले जीवों में धर्म अपने आप आ जाता है। यह आर्जव धर्म

पापों का नाश करने वाला है और सुख को उत्पन्न करने वाला है। जैसे जाप बनती है काँच की गुरिया, जिनसे माला बनती है, उनमें से किसी गुरिया में यदि टेढ़ा छेद हो तो उसमें लाख उपाय करो, माला में वह गुरिया नहीं नैस सकती। उसमें सूत्र नहीं प्रवेश हो सकता। इसी तरह जिसका हृदय टेढ़ा है, कुटिल है, मायाचार से परिपूर्ण है उसमें धर्म की बात प्रवेश नहीं कर सकती किन्तु सरल पुरुष उसको तुरन्त ग्रहण कर लेता है। सरलता एक बड़ा गुण है। यथा एक नगर में एक पण्डित जी प्रवचन करने पहुँचे तो रात्रि में मन्दिर में सभी जैन श्रावक पहुँचे। पण्डित जी ने उपदेश में कहा कि रात्रि में पानी नहीं पीना चाहिए। रात्रि में पानी पीना खून के बराबर होता है। ऐसा मनुस्मृति में लिखा है। श्रावकों ने कहा-महाराज, नहीं पियेंगे। कुछ लोगों ने रात्रि जल ग्रहण का त्याग कर दिया। दूसरे दिन सभा में एक दो पुरुष ही आये जो पहले तो बहुत आते थे। किन्तु जल का रात्रि में त्याग करने से आना बन्द हो गया। दूसरे दिन पण्डित जी ने पूछा-क्यों भाई तुम सब लोग रात्रि में क्यों नहीं आये थे। उन्होंने कहा-महाराज, आपने रात्रि को पानी छुड़ा दिया था सो महाराज हम लोग को खाना खाते रात हो गई सो महाराज हम लोग झूठे मुँह कैसे आते। ब्रह्मसीद्ध

सरलता का धर्म आर्जव धर्म कहलाता है। सरलता और जटिलता दो विरोधी तत्व हैं। बाँस दिखता तो सीधा है लेकिन उसकी जड़ें एकदम टेढ़ी-मेढ़ी। उसी प्रकार मानव ऊपर से तो सीधा है लेकिन अन्दर से कितना टेढ़ा है। बाँस की उपमा अनन्तानुबन्धी माया से दी गई है। टेढ़ा चलने वाला सर्प चौथे नरक तक जाता है, जबकि जो मानव सीधा दिखता है, वह सातवें नरक तक जाता है।

मायाचारी, छल, कपट का त्याग करना ही आर्जव है। चन्दन के वृक्ष की भाँति आर्जव कहीं-कहीं मिलता है, जबकि बेशरम के वृक्ष की भाँति मायाचारी, छल कपट हर जगह मिल

सकता है।

दूसरों के लिए गड़ढ़ा खोदने पर खोदने वाला स्वयं भी गड़ढ़े में गिरता है। जो दूसरों को मारने के लिए हाथ में अंगारा उठता है उसका हाथ तो पहले जलता है दूसरों का हाथ जले अथवा न जले।

“माया ठगनी से ठगा, यह सारा संसार।
जिसने माया को ठगा, वह पहुँचा भव पार॥”

सारा का सारा संसार माया मय है। छल कपट से भरा पड़ा है। चाहे धन की माया हो या ठगी की मायाचारी क्यों न हो जब तक जीवन में माया है, तब तक सुख नहीं। जब तक कुटिलता नहीं छोड़ेंगे तब तक सरलता पाना कठिन है। जब तक हमारी जटिलता, कुटिलता, धोखापन या मायाचारी की प्रवृत्ति खतम नहीं होगी, तब तक सुख, कोसों नहीं हजारों योजन दूर है। ;जु गति संसारी की भी हो सकती है, लेकिन श्रेष्ठता की अपेक्षा सि)ों की ही ;जु गति होती है।

मायाचारी हर जगह अपनी छल विद्या का इस्तेमाल करता है। मूर्ख के सामने छल भी सत्य सि) हो जाता है, लेकिन ज्ञानी के सामने तो उसे झुकना ही पड़ता है। ज्ञानी व्यक्ति ऐसे मायाचारी कपटी का अच्छा परीक्षण करके छोड़ देता है। जब व्यक्ति क्रोध को छोड़ता है, तो मार्दव भी आ जाता है। जब मृदुता आती है, तो सरलता आ ही जाती है। हमको मायाचारी छोड़ना है और सरलता को लाना है। मायाचारी व्यक्ति मरकर कभी बिल्ली तो कभी कुत्ता हुआ करता है। “माया तैर्यग्योनस्य” आचार्य उमास्वामी ने पहले ही कह दिया है कि मायाचारी करने वाला तिर्यच गति में जाता है।

एक बार एक ग्वालिन दूधा में पानी मिलाकर बेचती थी

उसने एक माह में 100 रु. प्राप्त किए। घर आते समय ग्वालिन स्नान करने लगी तब तक बन्दरों ने रुपयों की थैली ले भागा उसने आधो रुपये नदी में डाल दिये और आधो रुपये नदी के बाहर डाल दिये अतः यह कहावत सि) है।

“पानी का धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में”

कुटिलता द्धमायाचारीऋ के हृदय में कोई भी धर्म की बात प्रवेश नहीं कर सकती है उसके लिए छल करने में मजा आता है। यह मायाचारी मन कितने प्रकार से आकाश में महल और रेत के पुल बनाता रहता है लेकिन जब उस पर चलता है तो नरक, निगोद और तिर्यच गति जैसे दुःखों में गिर जाता है और जीवन का पुल टूट जाता है।

जब तक हमारे अन्दर सरलता नहीं आयेगी तब तक सुख को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। भगवान भी टेढ़ेपन में कभी प्रवेश नहीं कर सकते हैं। यदि आप परमात्मा को अपने हृदय के आसन में बिठाना चाहते हैं तो सरलता को प्राप्त करना होगा।

“जब तक तेरे पुण्य का बीता नहीं करार।
तब तक तुझको मफ है, औगुन करो हजार॥”

छल और छद्म से, भ्रम उत्पन्न कर,
मायावी धारते हैं कपट कटार को।
मन से मलीन होय, वाणी से दीन होय,
काया की माया से ठगते संसार को।
छल बल की नीति से हुए भयभीत जो,
जीवन में पाते हैं, आर्जव आधार को।
वीतराग भाव से, आतम स्वभाव से,
;जुता को धार पाते, आतम के सार को॥

लोग दुनियाँ में आते हैं चले जाते हैं।
परिवार में खोकर स्वयं से ही छले जाते हैं॥
छल बल से जिन्दगी जीते रहते संसार में।
भूल पर पश्चाताप करके हाथ मले जाते हैं॥

कुछ लोग स्वयं अपने आप से टूट रहे हैं।

अपनों से अपने सम्बन्धी भी छूट रहे हैं।
छल बल की नीति को स्वभाव मान लिया।
लोग अपनों को अपना बनाकर लूट रहे हैं॥
जाने क्यों इंसान की रौनक चली गई है।
तूल के नाम पर औरों से धूल मली गई है॥
कुछ समझ में नहीं आ रहा दुनियाँ का राज।
दुनियाँ गैरों से नहीं अपनों से छली गई है॥

ॐ ऋं श्री उत्तम आर्जव धर्मान्नाय नमः

उत्तम शौच धर्म

- | | | |
|--------------------|---|---------------------|
| 1. लोभ पाप है | - | शौच उत्तम धर्म है |
| 2. लोभ दुर्गन्ध है | - | शौच सुगन्ध है |
| 3. लोभ गर्त है | - | शौच उत्कर्ष है |
| 4. लोभ मैलापन है | - | शौच उज्ज्वलता है |
| 5. लोभ बन्धन है | - | शौच मुक्ति है |
| 6. लोभ कीचड़ है | - | शौच स्वच्छता है |
| 7. लोभ विपत्ति है | - | शौच सम्पत्ति है |
| 8. लोभ दुर्गति है | - | शौच सुगति है |
| 9. लोभ रोग है | - | शौच निरोग है |
| 10. लोभ राग है | - | शौच विराग है |
| 11. लोभ कर्मराह है | - | शौच निष्कर्म राह है |

- | | | |
|-----------------------|---|-----------------------|
| 12. लोभ कड़वाहट है | - | शौच मिठास है |
| 13. लोभ विकल्पदाता है | - | शौच निर्विकल्पदाता है |
| 14. लोभ विरूप है | - | शौच समरूप है |
| 15. लोभ अभिशाप है | - | शौच वरदान है |
| 16. लोभ संसार है | - | शौच मोक्ष है |
| 17. लोभ कचरा है | - | शौच रत्न है |
| 18. लोभ रात्रि है | - | शौचस्वर्णिम प्रभा है |
| 19. लोभ बन्ध है | - | शौच निर्जरा है |
| 20. लोभ दासता है | - | शौच स्वामीपना है |
| 21. लोभ कूटनीति है | - | शौच सुनीति है |
| 22. लोभ अनित्य है | - | शौच नित्य है |

“शुचेर्भावः शौचम्” शुचिता पवित्रता का भाव शौच है।

शौच के साथ लगा उत्तम शब्द वीतरागता की सत्ता का सूचक है। वीतराग भावपूर्ण पवित्रता शौच धर्म है।

सम संतोष जलेण जो, धोवदि तिव्व लोह मल पुंजं।

भोयण गिं) विहीणो, तस्य सउच्चं हवे विमलं।।त.वि.स. 32॥

जो समभाव और संतोषी रूपी जल से तीव्र लोभ रूपी मल के समूह को धोता है तथा भोजन की गृ)ता रहित होता है उसे शौच धर्म होता है।

शौच का अर्थ है जो अपना नहीं है, उसको त्याग करना, दान करना, उसको छोड़ना। आपके सामने दो चीजे हैं दुनियाँ के सारे भोग विलास या परमात्मा। अब आपको ही चुनाव करना है

कि आप किसे छोड़कर करना चाहते हैं? आपको परमात्मा के प्रातः आस्था हो या भोगापभोग के साधनों के प्रति। इसकी जानकारी शौच धर्म देता है। शौच धर्म की विरोधी लोभ कषाय मानी गई 25 कषायों में सबसे अन्त तक रहने वाली कषाय अपनी शक्ति का बोध कराती है शौच धर्म लोभ के अभाव में होता है।

शौच धर्म का अर्थ पवित्रता, निर्मलता एवं स्वच्छता है। आत्मा में जब तक कर्म की मिलावट रहेगी तब तक आपकी आत्मा परमात्मा नहीं बन सकती है।

‘प्रकर्ष लोभान्निवृत्ति शौचम्’ उत्कृष्ट रूप में लोभ से निवृत्त होना शौच है। लोभ को पाप का बाप कहा जाता है क्योंकि लोभ सभी प्रकार के पापों में प्रवृत्त हो जाता है? अभी तक आपने लड़के-लड़कियों के पाप सुने होंगे किन्तु कभी आपने पाप का बाप नहीं सुना होगा। हम आपको पाप का बाप बताते हैं कैसे लोभ का बाप बना।

एक बार एक पण्डित जी बनारस से पढ़कर आये तो उनकी पत्नी ने उनसे कहा आज उपदेश में महाराज ने कहा पाप का बाप बड़ा खतरनाक होता तो आप बताइये यह पाप का बाप कौन है? पण्डित जी असमंजस में पड़ गये कहने लगे यह तो मैंने नहीं पड़ा तब पत्नी ने कहा-क्या खाक पढ़के आये हो हम नहीं मानते आपको पण्डित। फिर से पढ़कर आओ पण्डित जी चल देते हैं रास्ते में वेश्या मिली उसने पण्डित जी को प्रणाम कर कहा-पण्डित जी कहाँ जा रहे हो। पण्डित जी ने कहा-छी: तू वेश्या तेरे घर पर अशु) हो जाऊँ वेश्या ने लालच दी 5रु. भेट दूँगी। पण्डित जी ने सोचा कोई देख थोड़े न रहा है। कुछ देर में 10-20-30-40 का लालच देकर आगे बढ़ाती हुई अन्त में कहा-पण्डित मेरे हाथ

पवित्र हो जाएँगे यदि एक ग्रास मेरे हाथ से खा लेंगे में 50रु भेट दूँगी। पण्डित जी तैयार हो गये तब वेश्या ने एक चाँटा मारा और कहा-यही पाप का बाप है कि लोभ में आकर आप अपना धर्म भूल गये और मुझ वेश्या से खाने को तैयार हो गये।

दृष्टान्त-यहाँ अभिप्राय यह है कि जिसका लोभ पूर्ण समाप्त हो गया तो उसके क्रोधादि समस्त कषायें निश्चित रूप से समाप्त हो गई और वह पूर्ण शुचिता को प्राप्त हो चुका है।

उक्त कथन से एक बात यह भी प्रकटिलित होती है कि शौच धर्म मात्र लोभ कषाय के अभाव का ही नाम नहीं, वरन् लोभान्त कषायों के अभाव का नाम है। क्योंकि यदि परिणाम विशु) का पवित्रता का नाम शौच धर्म है तो सिर्फ लोभ कषाय आत्मा को अपवित्र करती है ऐसा तो है नहीं, सभी कषायें अशुचिता को लाती हैं। अतः सि) हुआ कि क्रोध, मान, माया, लोभ सभी कषायों के अभाव से शौच धर्म प्रकट होता है।

यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि शारु में क्रोध के अभाव को, मान के अभाव को शौच धर्म क्यों नहीं कहा? लोभ के अभाव को ही क्यों कहा? इसका समाधान यह है कि क्रोधा के पूर्णतः चले जाने पर भी आत्मा में पूर्णतः पवित्रता प्रकट नहीं होती, क्योंकि लोभ तब भी रह सकता है। पर लोभ के पूर्णतः चले जाने पर कोई भी कषाय नहीं रहती है। अतः पूर्ण पवित्रता को लक्ष्य में रखकर ही लोभ के अभाव को शौच धर्म कहा है। “शौच सदा निरदोष, धर्म बड़ो संसार में” सबसे बड़ा शौच धर्म है। इसका कारण भी यही है कि कषायों का अभाव होने पर शौच धर्म प्रकट होता है। अंश रूप में जितना जितना कषायों का अभाव होगा, उतना उतना शौच धर्म प्रकट होता जावेगा। किन्तु जिसकी चित्त भूमि संतोष रूपी मधुर जल से अभिसिंचित है वही

शौच धर्म को पा सकता है तथा सुख शान्ति का पात्र बन सकता है। धन संचय की तृष्णा में इतार-उधर दौड़ने वाले को कभी सातिशय सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

कहा भी है-“आशायाः घोरं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।”
और भी कहा है-

“सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानां इतश्चेतश्च धावताम्॥”

जिस प्रकार मरुस्थल में प्यास से व्याकुल हिरण दूर चमकते हुए बालू के कणों को देखकर समझता है कि आगे जल है और जल पीने के लिए दौड़ता है। दौड़ते-दौड़ते उसके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं पर जल मिलता नहीं है उसी प्रकार संसारी जीव पंचेन्द्रिय विषयों की आकांक्षा से पीड़ित हुए भोगों की ओर दौड़ रहे हैं, वे समझते हैं कि खाने में सुख है, सुन्दर वस्त्रभूषण में सुख है। पुत्र-पौत्र बन्धु बान्धवों से सुख है और उसकी सुरक्षा व संचय में अपने अमूल्य मानव जीवन को वह व्यर्थ गंवा देता है, मिलता कुछ नहीं है। आर्त रौद्र ध्यान से मरणकर नरक निगोद आदि दुर्गति का पात्र बनता है। ऐसे जीवों पर अनुकम्पा कर शौच धर्म उनका आह्वान करता है। परम हितैषी मित्र की तरह उनको हस्तावलम्बन देकर दुःख रूपी कूप से निकालकर अविनाशी सुख पाने का उपाय बताता है। शौच धर्म यह बताता है कि यदि रत्न चाहिए तो ऐसे रत्नों का संचय करो, जिसकी कान्ति कभी नीकी न पड़े। जौहरी बनो। कंकड़ पत्थरों का संचय करते हुए बहुत दिन बीत गये, पंचेन्द्रिय विषय रूप विष वृक्ष का सिंचन करते हुए बहुत काल से जन्म मरण करते हुए संसार में घूम रहे हो। अब मोह निद्रा को छोड़ो। अपने हृदय रूपी चित्रट को स्वच्छ करो। गन्दे कागज पर चित्र अंकित नहीं किये जा सकते हैं उसी प्रकार आशा

तृष्णा से विकृत हमारी चित्त भूमि पर सद्गुणों का प्रवेश नहीं हो सकता है।

दृष्टान्त-अपनी चिक्कला की प्रशंसा करते हुए दो चिक्कार राजदरबार में पहुँचे। राजा ने एक ही कक्ष के मध्य में पर्दा डलवाकर दोनों चिक्कारों को अलग-अलग दो दीवारों पर अपनी चिक्कारी प्रदर्शित करने की आज्ञा दे दी और 6 मास का समय निश्चित कर दिया। दोनों चिक्कार तदनुसार अपनी चिक्कारी के लिए साधन जुटाने लगे। एक चिक्कार सुन्दर-सुन्दर रंग लाकर ब्रुश से चित्र बनाने लगा। दूसरा चिक्कार पानी और ब्रुश लेकर दीवार को घिसने लगा और 6 महीने तक दीवार ही घिसता रहा। समय पूरा होने पर राजा उनकी चिक्कारी देखने को पहुँच गया और बीच के पर्दे को हटाने की आज्ञा दी ताकि तुलनात्मक ढंग से उनकी चिक्कला का परीक्षण हो सके। पर्दा हटाते ही खाली घिसी हुई दीवार पर दूसरे चिक्कार के सुन्दर मनोज्ञ चित्र झलकने लगे और राजा घिसी हुई दीवार को पसन्द करता है और प्रथम पुरस्कार देना भी घोषित कर देता है। दीवार को घिसकर स्वच्छ बनाने वाले चिक्कार ने चित्र एक भी नहीं बनाये तो भी प्रथम पुरस्कार का पात्र बनता है तो बन्धुओं इसी प्रकार जो पुरुष धर्म क्षेत्र में आकर प्रथमतः चित्त भूमि को निर्मल बनाने में जुट जाता है। उसको सहज ही सम्यक्दर्शन प्राप्त हो जाता है। रत्नत्रय की पुष्टि करते हुए मुक्ति रूपी कन्या का वह वरण कर लेता है।

अतः सर्वप्रथम हम कषायों के उन्मूलन के लिए प्रयास करें, बाह्य आडम्बरों में उलझकर न रह जायें। दीपक भले ही स्वर्णालंकारों से विभूषित हो किन्तु यदि उसमें तेल की एक बूंद भी नहीं है तो वह प्रकाश देने में असमर्थ होता है। इसी प्रकार हीरा, मोती, माणिक, पन्ना आदि से घर को खूब भर लो किन्तु

जीवन में यदि शील, संयम, सदाचार नहीं है तो वह कभी दुःख से उन्मुक्त नहीं हो सकता है। औंधा घड़ा खुले हुए नल के नीचे दिन भर रखा रहे तो भी नहीं भरेगा क्योंकि उल्टा है इसी प्रकार औंधे घड़े के समान कषाय मुक्त युक्त जीवों का चित्त रूपी कलश भी सुखद गुण राशि से नहीं भरा जा सकता है। शौच धर्म की प्राप्ति के लिये ज्ञान और वैराग्य की वृत्ति में सतत् लगे रहें।

ज्ञानवैराग्यरज्जुभ्यां नित्यमुत्पथवर्तिनः।
जितचित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रियवाजिनः॥

नित्य कुमार्ग में गमन करने वाले इन्द्रिय रूप ऋधोड़े को ऋह ज्ञान वैराग्य की डोरी से बाँधकर वश में किया जा सकता है और इन्द्रियाँ जिसके वश में है वही कषाय भावों को नष्ट कर पूर्ण शुचिता को पा सकता है।

एक बार एक व्यक्ति आङ्ग शांति सागर जी महाराज के पास गया उसने पूछा-महाराज आप इस जवानी में इन्द्रियों को कैसे वश में करते हैं हमारे लिए भी उपाय बताइये तब उन्होंने कहा था-घोड़ा ज्यादा उत्पाद मचाता है तो कुछ दिन के लिए उसका दाना पानी बन्द कर दे तो स्वतः ही शांत पड़ जाएगा।

यथा यथा हृषीकानि स्ववशं यान्ति देहिनाम्।
तथा तथा सुरुत्युच्चैः हृदिविज्ञान भास्करम्।

जैसे-जैसे इन्द्रियाँ वश में होती जाती है वैसे-वैसे प्राणियों के अन्तर में छिपा ज्ञान भास्कर अप्रतिम तेज के साथ प्रकट होने लगता है। भेद विज्ञान की तीक्ष्ण बाणों से निहत हुआ कषाय रूपी शत्रु उसी प्रकार भागता है जैसे सूर्य की किरणों के प्रकट होते ही अंधकार विलीन हो जाता है। चर्म धोने से कर्म नहीं धुलते हैं। कर्म धोने के लिए भेद ज्ञान रूपी साबुन और संयम रूपी जल चाहिए।

भेद ज्ञान साबुन कह्यो ,समता समरस नीर।
धोबी अन्तर आत्मा, धोवे निजगुण चीर॥

जिस प्रकार धोबी साबुन जलादि से कपड़ों को धोकर स्वच्छ कर देता है उसी प्रकार अन्तरात्मा भव्य जीव भी भेद ज्ञान रूपी साबुन और समता रूपी जल से अपने कर्म संयोग से मलिन अपने गुण रूपी वस्त्र को धोता है। वह अपने व्रतों में लगे हुए अतिचार, अनाचार, अतिक्रम, व्यतिक्रम आदि दोषों से दूर कर आत्मगुण रूपी वस्त्र को स्वच्छ करता है। यहाँ पर प्रश्न होता है कि अतिक्रम, व्यतिक्रम आदि दोष क्या है? इसके उत्तर में आचार्य अमितगति स्वामी लिखते हैं-

क्षतिं मनः शुविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम्।
प्रभोतिचारं विषयेषुवर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्ताम्॥

मनः शु) की क्षति होना अर्थात् विषय आकांक्षा से मन का दूषित होना अतिक्रम है। पुनः गृहीत शीलव्रतादि को छोड़ देना, सीमा का उल्लंघन कर देना व्यतिक्रम है। विषयों में प्रवृत्त हो जाना अतिचार है और अति आसक्ति से विषयों का सेवन करना अनाचार है। इन दोषों से मुक्त होने पर ही शौच धर्म जीवन में आ सकता है।

आदमी संसार सागर में किसी न किसी लोभ से, किसी आशा से जी रहा है। चाहे धन की आशा हो, पद की आशा हो सम्मान की आशा हो और यही आशा लोभ है तृष्णा है। लोभ पाप की जड़ है। लोभ के कारण ही संसार में सभी पाप होते हैं।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप का बाप बखाना।
आशा पाप महा दुःखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्राणी॥

धन बड़ा नहीं है, धर्म बड़ा है। धर्म से ही सभी आकांक्षायें

पूर्ण होती हैं। धन से भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति हो सकती है लेकिन सन्तोष, शांति, मुक्ति मोक्ष नहीं खरीद सकते हैं। सच्ची शांति तो धर्म से ही प्राप्त करना संभव है।

आत्मा में अपवित्रता लोभ के कारण ही होती है। क्रोधा प्रीति का, मान विनय का, माया पवित्रता का नाश करता है जबकि लोभ सर्वनाश कर देता है।

लोभ हमारे शरीर में विकार पैदा करता है। अतः अपनी आत्मा को स्वच्छ, निर्मल एवं सरल बनाने के लिए लोभ प्रवृत्ति त्यागकर शौच धर्म को अपनाना होगा। लोभ शब्द अपने को स्वयं स्पष्ट करता है

लो + भ = लोभ:- लो अर्थात् लोक में, भ = अर्थात् भटकाने वाला। जो हमें लोक में भटकाता है, लोभ कहलाता है।

एक कथानक आता है:- एक सेठ थे उनका नाम करोड़ी मल जी था। वे अपनी दुकान से वापिस घर जा रहे थे। उन्होंने किसी को दान देते हुए देखा तो उदास हो गये। द्वार में पत्नी ने पूछा

नारी पूछे सूम से, काहे बदन मलीन।
क्या कछु तुमरो गिर गयो या काहू को दीन॥

सेठजी ने कहा-

न मेरा कछु गिर गयो, न काहू को दीन।
देवत देखो और को, जासे चित्त मलीन॥

सेठजी की पत्नी धर्मात्मा थी, उसने पति को बिना बताये पति के नाम से एक गाय दान दे दी। जब सेठ मर गया, तब यमराज ने लेखा जोखा किया तो सारे के सारे कर्म बुरे थे। ध्यान

से देखा तो पाया कि सेठजी के नाम से सेठानी ने एक गाय दान में दी थी। यमराज ने कहा तुम्हें दो घण्टे के लिए यह गाय दी जाती है, इसके बाद तुम्हें सातवें नरक में जाना पड़ेगा। सेठ ने बनियाई बु) से काम किया और गाय से कहा-हे गाय! तुम यमराज के पेट में सींग घुसेड़ दो। यमराज भागा एक राजा के पास तो राजा ने भी रक्षा करने से मना कर दिया। यमराज घबड़ा गया और तीर्थंकर भगवान की शरण में पहुँच गया तब से प्रभु की पूजन में लीन हो गया। इतने में 2 घण्टे बीत गये गाय शिथिल हो गई। यमराज ने कहा अब सातवें नरक में जाना पड़ेगा। सेठ ने कहा मैंने भगवान की पूजा की थी, उनके नाम को याद किया था। जो भगवान की पूजा करता है वह नरक नहीं जाता। यमराज ने कहा ठीक है तुमने पूजा की तो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। सेठजी के लिए धर्म का सार ज्ञात हो गया और वह मुनि बन गये और मोक्ष को प्राप्त किया। सारांश यह है कि जब ऐसे लोभी सेठ जी भगवान की पूजा करने से मोक्ष जा सकते हैं तो शौचधर्म का पालन निश्चित ही हमारे दुःखसंसार को समाप्त करने में सहायक होगा।

लोभ लोक में भ्रमण कराने वाला होता है। आज धर्म के नाम पर दान देने की बात आती है, तब व्यक्ति कहने लगता है, कि अभी तो कुछ नहीं है, दुकान चल नहीं रही है, आदि आदि दीन वचन बोलता है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा है-

विपद् व पदावर्ते पदकेवाति वाह्यते।
यावत्तावद्वन्त्यन्याः प्रचुराः विपदः पुरः॥

जिस प्रकार घटी यंत्र में लगी घटिया की तरह जब एक विपत्ति समाप्त हो जाती है तब तक दूसरी अनेक विपत्तियाँ सामने आ जाती हैं। इस प्रकार मानव हीन वचन बोलकर अनेक विपत्तियों

का आमंत्रित करता है।

व्यक्ति के पास छः पीढ़ी के लिए भी धन सम्पत्ति रखी है लेकिन सातवीं की चिंता लगी हुई है। वह कंजूस जोड़-जोड़ कर रखते हैं।

शरीर तो अशुचि है, सब मलों का घर है यह शरीर ऊपर से अच्छा लगता है किन्तु इसमें नवद्वारों से गन्दगी बहती रहती है। “नव मल द्वार बहे धिनकारी। असि देह करे किमयारी।” हमें शरीर से स्वच्छ होना है तो आत्मा से भी लोभ को हटाना होगा। साथ में रत्नत्रय प्राप्ति का ध्यान रखना होगा। लोभ अनादि काल से लगा हुआ है। उसे नष्ट करना है और शुचि ब्रह्मचर्य धर्म को पाना है। आशा का गर्त इतना बड़ा है आङ्ग देव सेन स्वामी ने कहा-

“आशा गर्तं प्रति प्राणी, यस्मिन् विश्वं मणूपमं।
कस्य किं कियदायाति, वृथा हि विषयोषिता”

प्रत्येक प्राणी का आशा रूपी गड्ढा इतना बड़ा है कि सम्पूर्ण विश्व भी उसमें समा जाये तो अणु के समान प्रतीत होता है निर संसार में प्राणी तो अनन्त है किसके हिस्से में कितना आयेगा? विचार करो। निश्चय से, विषयाकांक्षा ही व्यर्थ है। दुःख है कि वृथावस्था होने पर भी तृष्णा नहीं हटती है। जो व्यक्ति 99 के चक्कर में पड़ जाता है तो वह परेशान रहता है। जो तृष्णा से दूर रहता है, वह सुखी रहता है। जो तृष्णा करता है वह बुरी तरह भटक जाता है और भव सागर में भटकता रहता है। कहा भी है कि-

पूत सपूत तो का धन संचै, क्षण में ढेर लगा देगा।
पूत कपूत तो का धन संचै, खाक में सभी मिला देगा॥

अर्थात् पुत्र द्यूतपूत सपूत है तो धन को इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं है और पूत कपूत है तो भी धन जमा करने की जरूरत नहीं, क्योंकि जो सपूत होगा वह स्वयं सम्पदा जुटा लेगा और जो कपूत होगा, उसे कितना भी कमाकर रख देना वह कुछ ही समय में नष्ट कर देगा। व्यसनों में बर्बाद कर स्वयं को नष्ट कर लेगा। ये संसार के रिश्ते नाते आदि सभी लोभ के आधार पर बने हैं। इसलिए संत कहते हैं-

बहुत अच्छा हुआ दुनियाँ से बेकाई हो गई।
सारे रिश्ते और नातों की फाई हो गई॥
खून के रिश्ते बने हैं खून चूसने के लिए।
खून के व्यापार में दुनियाँ कसाई हो गई॥

एक कथानक आता है। एक सेठ का लड़का महाराज जी के पास गया। महाराज जी से कहा महाराज मैं धर्म करना चाहता हूँ। महाराज जी ने समझाया और कहा जितना कर सकते हो उतना धर्म करो। कम से कम 30 मिनट का समय निकालकर आ जाया करो। महाराज जी ने भी उसे प्राणायाम सीखने की सलाह दी और लड़का 2-3 घंटों का प्राणायाम करने लगा। एक दिन गुरु ने कहा तुम्हारी परीक्षा होने वाली है मैं जो कहता हूँ सो करो। घर जाकर कहना कि मुझे सपना आया कि मेरी मौत होने वाली है। आप लोग मेरी जो सेवा करना चाहते हो सो कर लो। सब कुछ खिला पिला दो, उसने ऐसा ही किया। यह सुनकर रोना धोना होने लगा। वैद्य ज्योतिषी आ गये। रात भर मातम ब्रह्मदुःखऋषि से निकली। सुबह योग के लिए जाते समय लड़का दरवाजा पकड़कर नीचे गिर गया। वैद्य डॉक्टर आये लेकिन कुछ नहीं हुआ। वह तो प्राणायाम में लेटा हुआ था। अन्त में गुरुजी पहुँचे परिवार वालों ने कहा इसको बचा लो। गुरुजी बोले यमराज स्वर्ग से आ गये हैं, वे तो खाली हाथ जायेंगे नहीं। अतः इस दवा को कोई व्यक्ति खा ले तो यह व्यक्ति बच जायेगा तथा दवा खाने वाला मर जायेगा।

सभी से क्रमशः पूछा माँ से, पिता से, भाई से, बहिन से, अन्त में पत्नी का भी नम्बर आया। पत्नी ने कहा कि अभी शादी हुए 6 महीने नहीं हुये। मैं नौकरी आदि करके जीवन काट लूंगी। गुरुजी बोले और कोई मित्र आदि है जो इस दवा को खा ले किन्तु कोई तैयार नहीं हुआ। तो गुरुजी बोले एक उपाय है, मैं ही इस दवाई की पुड़िया को खा लेता हूँ। सभी लोग प्रसन्न नजर आने लगे और कहने लगे कि हाँ आप तो वैसे ही अकेले हैं, न कोई रोने वाला है आप त्रान्य है। साधु ने नाटक बन्द कर दिया, पुड़िया नैक दी। लड़के के मुख पर पानी के छींटे मारे, लड़का उठ खड़ा हुआ और सब घटनाक्रम की जानकारी हो गई। बाद में सेठ पुत्र गुरुजी से निवेदन करने लगा शीघ्र ही यहाँ से चलो ये घर नहीं मरघट है। कहा है स्वार्थ ब्रह्मलोभत्र के सभी साथी हैं। “घर, कारागृह, वनिता बेड़ी परिजन जन रखवारे”

शमां बुझकर भी जल सकती है।
किशती तूगन से निकल सकती है॥
मायूस न करो अपने इरादे प्यारे भाई।
पुरुषार्थ करो तो मुक्ति भी मिल सकती है॥

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए लोभ की इति करके शौच धर्म जीवन में अपनायें।

चेतन को भूलकर माया में डूलकर दौलत की चाहत में निरते हैं घूमते।
मल के संयोग से बनी है ये देह तेरी
मैली कुचैली को निर रहे चूमते।
माया की चाहत में, मन को मलीन करें
जिसको संसार के पशु भी न सूँघते।
शौच धर्म पाते हैं वीतराग धारी सन्त
आत्मा स्वभाव में जो रहते हैं झूमते॥

हमें डूल तो मिलते पर मकरन्द नहीं मिलता।
शब्दों को पाकर भी शुभ छन्द नहीं मिलता॥
जीवन तो सभी जीते हैं दुनियाँ में प्यारे भाई।
शौच धर्म के अभाव में जीवन का आनन्द नहीं मिलता॥
आज इंसान संसार से उदास नहीं है।
अरे! इस जहाँ में किसी का आवास नहीं है॥
जो धर्म पर श्रान नहीं करते प्यारे भाई।
शौच धर्म का उनके जीवन में वास नहीं है॥
हमें कैसे जीना है धर्म सिखाता है बन्धुओ।
तन से चेतन का भेद दिखाता है बन्धुओ॥
शौच धर्म की महिमा का कोई पार नहीं है।
शौच धर्म इंसान को भगवान बनाता है बन्धुओ॥

ॐ ऋषीं श्री उत्तम शौच धर्मान्नाय नमः

उत्तम सत्य धर्म

सत्य खजाना है तो	- झूठ नरक का गर्त है
सत्य ज्ञान का प्रकाश है तो	- झूठ अंधकार खास है
सत्य चेतना का प्रवाह है तो	- झूठ उन्नति का ब्रेक है
सत्य चिराग है तो	- झूठ दावानल आग है
सत्य प्रवेश द्वार है तो	- झूठ दीवार है
सत्य निर्माण है तो	- झूठ हृदय भेदी बाण है
सत्य सिद्धि है तो	- झूठ अफलता है
सत्य विश्व शान्ति है तो	- झूठ अशान्ति है
सत्य प्रेम का आलिंगन है तो	- झूठ अग्नि संताप है
सत्य ऊर्जा का केन्द्र है तो	- झूठ शक्ति का स्त्रक्रास है
सत्य धर्म की स्वीकृति है तो	- झूठ अधर्म का प्रवेश है
सत्य जीवन का विकास है तो	- झूठ जीवन स्त्रक्रास है

सत्य आत्मा का प्रेम्ब है तो	- झूठ संसार का द्योतक है
सत्य धर्म का अंकुश है तो	- झूठ अधर्म की बेल है
सत्य केवलज्ञान की किरण है तो	- झूठ अज्ञान का वरण है
सत्य सुई है तो	- झूठ कैंची है
सत्य शाश्वत है तो	- झूठ अशाश्वत है
सत्य क्रान्ति है तो	- झूठ अशान्ति है
सत्य संघर्ष है तो	- झूठ विकर्ष है
सत्य आलोक है तो	- झूठ विलोक है
सत्य संग्राम है तो	- झूठ विकाश में विश्राम है
सत्य श्रेष्ठ है तो	- झूठ निम्नता है
सत्य प्रकाश है तो	- झूठ अंधकार है
सत्य ताकत है तो	- झूठ कमजोरी है
सत्य अनुलोम है तो	- झूठ विलोम है
सत्य विवेक है तो	- झूठ अविवेक है
सत्य अभिप्राय है तो	- झूठ शब्द की भटकन है

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
नानृतं च प्रियं ब्रूयाद् एषः धर्म सनातनः॥

सत्य बोलो प्रिय बोलो असत्य और अप्रिय नहीं बोलना चाहिए। असत्य और प्रिय भी नहीं बोलना यही सनातन धर्म है।

सत्य धर्म की जब भी चर्चा चलती है तो प्रायः वचन सत्य को ही सत्य धर्म मान लिया जाता है यद्यपि सत्य वचन को ही आगम में सत्य वचन कहा है किन्तु निश्चय से दोनों में महान् अन्तर है। सत् अर्थात् जिसकी सत्ता जिस रूप में है उसे वैसा जानना, मानना, श्र)ान करना और बोलना सत्य वचन है। वाणी

का भूषण सत्य है, [REDACTED] भी है, रोशनी है और प्रकाश है तो झूठ है [REDACTED] और अविद्यासत्य जीवन का अन्तिम सत्य है यदि आप जीना चाहते हैं तो सत्य बोलो यदि आप असत्य के सहारे रहे तो जी भी नहीं पाओगे और मर भी नहीं पाओगे। सत्य अपने पैरों से चलता है, लेकिन असत्य को चलाने के लिए सत्य से वैशाखियाँ उधार लेनी पड़ती हैं। सत्य है दिव्यात्मा का पुरस्कार तो असत्य है, राक्षसों का, मूर्खों का आधार। सत्य का परिणाम तीनों लोक में सर्वमान्य होता है तो झूठ अल्पकाल सि) होता है। एक झूठ को ढ़पापकृ छिपाने के लिए हजारों झूठे वचनों का सहारा लेना पड़ता है फिर भी नहीं छुपता है।

यद्यपि सत्य वचन और सत्य धर्म में बहुत बड़ा अन्तर है वाणी पुद्गल की पर्याय है और उत्तम सत्य आत्मा का धर्म। आत्मा का धर्म आत्मा में रहता है शरीर और वचन में नहीं। जो आत्मा का धर्म है वह सर्व सि) में सत् रूप से है उत्तम क्षमादि धर्म सि) में विद्यमान है उनमें सत्य धर्म तो है पर सत्य वचन नहीं। इससे सि) है कि सत्य वचन सत्य धर्म नहीं है।

यदि सत्य वचन को सत्य धर्म माने तो सि) का सत्य धर्म नहीं रहेगा क्योंकि वह सत्य बोलते नहीं हैं जब बोलते नहीं तो सत्य और झूठ का प्रश्न ही नहीं है। सत्य धर्म के धारी जीवन पर्यन्त मौन भी रह सकते हैं और तीर्थकर दीक्षा लेते ही मौन हो जाते हैं तो क्या सत्य धर्म नहीं है? इससे सि) है कि सत्य धर्म न सत्य बोलने में है, न हित मित प्रिय बोलने में है, न निषेध रूप मौन में है। यह सब वाणी के धर्म है पुद्गल की पर्याय रूप है और सत्य धर्म आत्मा का स्वभाव रूप धर्म है।

जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना, मानना यह ज्ञान का कार्य है असत्य तो वाणी में होता है या ज्ञान में वस्तु तो जैसी है

वैसी होती है इससे असत्य का सत् नहीं होता।

मीठा खाने वाले तो सैकड़ों मनुष्य मिल जायेंगे किन्तु नीम की पत्ती खाने वाले कम मिलेंगे। जो विद्वान् होगा गुण ग्राही होगा वह ही नीम खा सकता है क्योंकि उससे अनेक बीमारियाँ दूर हो जाती है। ज्ञानी कहेगा मुझको मीठा नहीं खाना क्योंकि जो वर्तमान में सुख देने वाला है वह भविष्य में दुःख देगा और लोटा लेकर घूमने को मजबूर कर देगा। लेकिन जो कड़वी नीम होगी वह वर्तमान में कड़वी होगी, लेकिन भविष्य में सुख देने वाली होगी। यथार्थ में सत्य को ग्रहण करने वाले बहुत कम मिलेंगे। लेकिन झूठ को लेने वाले हजारों लोग मिलेंगे क्योंकि लोग कहते हैं कि सत्य कड़वा होता है। आचार्य समन्तभद्र आदि विद्वानों ;षियों आचार्यों का कथन है कि श्रावकोचित सत्य कैसा हो ना चाहिए तो उन्होंने कहा-सत्य हित, मित, प्रिय होना चाहिए। अप्रिय सत्य को कभी भी सत्य नहीं माना। आ. समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है कि-

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।

यद् तद् वदन्ति सन्तः स्थूल मृषावाद वैरमणम्॥

हमें स्थूल झूठ नहीं बोलना चाहिए तथा ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जिससे जीवों की हिंसा हो जाए। जीव रक्षा के लिए बोला गया झूठ सत्य की श्रेणी में आ सकता है।

एक बार एक शिकारी हाथ में चिड़िया लिये हुये था। चिड़िया जिंदा थी, धीरे-धीरे उसकी स्वाँस चल रही थी, लेकिन शिकारी साधु के सत्य की परीक्षा लेना चाहता था। साधक के पास जाकर चिड़िया को दिखाकर पूछा कि यह चिड़िया मरी है या जिंदा? साधक ने जीव दया के भाव से कहा कि यह तो मरी है। शिकारी ने जैसे ही उसे छोड़ा वह तुर्र से उड़ गई। तब शिकारी

ने कहा-आपने झूठ क्यों बोला तब साधक ने कहा-प्राण रक्षा में यह झूठ नहीं सत्य ही है।

आगम में एक कथानक भी आता है कि एक बार एक शिकारी नीलगाय को मारने के लिए पीछा कर रहा था। आगे-आगे नीलगाय अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए जान बचाकर भाग रही थी। पीछे-पीछे शिकारी घातक हथियार लेकर के हंता हुआ नीलगाय के पीछे भाग रहा था। एक स्थान पर महात्मा जी बैठकर साधना कर रहे थे। उनकी नजर इस घटना पर पड़ी उन्होंने नीलगाय को भागते हुए देखा। उन्होंने विचार किया कि नीलगाय जिस प्रकार जान बचाकर भाग रही है। निश्चित ही गाय को अपने प्राण हरे जाने का खतरा है। इतने में शिकारी व्यक्ति हंता हुआ हाथ में हथियार लेकर आते दिखा। शिकारी ने महात्मा जी से पूछा-महात्मा जी आपने यहाँ से गाय को जाते हुए देखा तो महात्मा जी तुरन्त खड़े हो गये और कहा जब से मैं यहाँ पर खड़ा हूँ, किसी गाय को जाते हुए नहीं देखा। शिकारी महात्मा की बातों पर ब्रुवचनों परऋ विश्वास करके वहीं से वापिस हो गया। बन्धुओं ऐसा सत्य बोलें जो कि जीवों की रक्षा करने वाला हो।

बोली ऐसी बोलिये कोई न कहे चुप।

बैठक ऐसी बैठिये कि कोई न कहे उठ॥

एक विद्वान ने कहा भी है कि एक बार कमान से निकला तीर का घाव उपचार से भरा जा सकता है, किन्तु जबान से निकली बोली का तीर नासूर बनकर जीवन भर भव-भव में पीड़ा पहुँचाता रहता है।

प्रिय वाक्य प्रदा नेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।

तस्माद् तदैव वक्तव्यं वाक्ये किं दरिद्रता॥

प्रिय वचन बोलने से सभी संतोष को प्राप्त होते हैं। अतः हमेशा प्रिय वचन बोलना चाहिए। वचनों में क्या दरिद्रता रखना?

महाभारत का आधार जवानी का जोश कड़वापन का एक बोल ही तो था। द्रौपदी का दुर्योधन से यह कहना कि “अंधों के अंधे ही होते हैं।” यह वाणी का तीर दुर्योधन को जीवन भर चुभता रहा। घटनाक्रम आप सभी को परिणाम सहित ज्ञात है। अतः सत्य धर्म आपके जीवन पथ में पथगामी हो। हमारे द्वारा निकाले गये शब्द कभी-कभी व्यक्ति को गोली की भाँति चुभते रहते हैं। गोली का घाव लगने से मनुष्य को जितना कष्ट नहीं होता जितना कि बोली से कष्ट होता है। इसलिए किसी शायर ने कहा है-

छुरी का तीर का तलवार का जख्म तो भरा।

लगा जो तीर जुबां का वह रहा सदा हरा॥

और भी कहा है

गोली से बोली बुरी जो दिल में लग जाये।

गोली तो सहले मनुज, बोली सही न जावे॥

एक व्यक्ति बहुत ईमानदार था। वह कभी भी झूठ नहीं बोलता था। बस साल में एक बार झूठ बोलता था। नौकरी के लिए एक सेठ के पास गया। उसने सारी बातें स्पष्ट कर दी कि मैं साल में एक बार झूठ बोलता हूँ। सेठ ने प्रसन्नता पूर्वक नौकरी पर रख लिया, पर वह भूल गया कि नौकर साल में एक बार झूठ बोलेगा। समय बीत गया वह कभी लगन एवं ईमानदारी से काम करता ही था। सेठ अत्यधिक प्रसन्न रहता था। साल का अंत झूठ बोलने वाला दिन भी आ गया। वह सेठ के पास जाकर झूठ बोला कि आपको काम से नुर्सत नहीं है। घर में कौन आता है? यह देखने की भी नुर्सत नहीं है। यदि मैंने आपका नमक न खाया होता तो

कब का नौकरी छोड़कर चला जाता? इसी प्रकार घर जाकर सेठानी जी से कहा-सेठ जी इतनी देर तक बाहर रहते हैं। क्या पता कहाँ जाते हैं, किससे मिलते हैं? नौकर ने सेठानी से कह दिया कि आज सेठ जी “तुम्हारी आधी रात में नाक काटेगे” और सेठ जी से कहा “आज रात सेठानी तुम्हारी आधी मूँछ काटेगी।”

दोनों को नौकर की बातें सही लगी। रात में सेठ जी सेठानी दोनों आपस में औजार रखकर सोये। आधी रात में एक दूसरे को मारने के लिए तैयार हुए। वह भी कमरे में छुप गया। जब दोनों एक दूसरे को मारने के लिए तैयार हुए तब नौकर ने सामने आकर कहा-पूरा हो गया, पूरा हो गया। सेठ ने चौंककर कहा-क्या हो गया तब नौकर ने कहा-झूठ बोलने का नियम पूरा हो गया। सारी बातें स्पष्ट कर दी। सारांश यह है कि एक झूठ भी क्या से क्या करा सकता है। अतः सत्य धर्म को स्वीकार करना चाहिए।

जो बात हो, सफ़ हो, सुथरी हो, भली हो।

कड़वी न हो, खटी न हो, मिश्री की डली हो॥

“वसु झूठ सेती नरक पहुँचा सुरग में नारद गया”

राजा वसु ने केवल एक ही झूठ बोला था, जिससे वह नरक पहुँचा था। जब व्यक्ति के अन्दर असत्य आ जाता है तो सारी की सारी बुराईयाँ प्रकट हो जाती हैं। असत्य कभी भी छुपता नहीं है। कभी न कभी असलियत सामने आ जाती है। सीता ने एक सत्य को प्राप्त करने के लिए अग्नि परीक्षा देना स्वीकार किया। सेठ सुदर्शन उसी समय एक सत्य के लिए सूली पर चढ़ गये। धर्मराज युधिष्ठिर का नाम सत्य धर्म पर चलने के कारण धर्मराज रखा गया है। राजा हरिश्चन्द्र सत्य बोलने के कारण ही महान् हुए हैं। उन्होंने एक सत्य की खातिर धन, दौलत, समाज यहाँ तक की परिवार, बेटा तक को भी छोड़ दिया। वाणी का भूषण सत्य ही

है।

लोक में जो व्यक्ति असत्य बोलने वाले हैं। वे सैकड़ों पान चबाकर भी मुख की शोभा नहीं बना सकते। मुख की शोभा तो सत्यवचन बोलने से होती है।

“सत्य वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
कर्ण द्वार से संचरे शाले सकल शरीर॥

आपके पास तो सत्य, असत्य, मीठे और कटुक सभी तरह के वचन हैं। अब आप प्रयोग किसका करते हैं, वह तो आपके ऊपर निर्भर करता है। कौआ भी काला एवं कोयल भी काली होती है। लेकिन जब कौआ बोलता है तो लोग कान बन्द कर लेते हैं जबकि कोयल बोलती है तो आनन्द विभोर हो जाते हैं।

एक बार एक सेठजी के पास एक भिखारी आया, सेठ जी बड़े दयालु, सदाचारी, धार्मिक प्रकृति के थे। उसने सेठ जी से कहा मैं दरिद्र हूँ। मुझे हर व्यक्ति ने ठुकराया है। कोई अपने पास नहीं रखता है। सेठजी ने दयालुता में उस दरिद्री को शरण दी। जिसे थोड़ी सी जगह मिल जाये तो वो पसरने लगता है। वह उस शरण दे दाता को ही बाहर कर देता है। एक बार आधी रात को सेठ जी को आभा जाते दिखाई दी तब सेठ जी ने कहा तुम कौन हो-आवाज आई मैं लक्ष्मी हूँ, मैं जा रही हूँ, तुमने दरिद्रता को अपने घर में स्थान दे दिया इसलिए मैं बल्लक्ष्मी नहीं रह सकती। सेठ जी ने कहा शरणागत की रक्षा मेरा धर्म है। मैं उसे नहीं निकाल सकता। लक्ष्मी चली गई। कुछ दिनों बाद सेठजी को आधीरात में फिर आभा दिखाई दी। आवाज आई मैं पुण्य हूँ, दान ब्रह्मपुण्य लक्ष्मी से ही होता है। मैं भी जा रहा हूँ। सेठ जी ने उसे भी जाने दिया। तब सेठ जी ने सोचा मेरा धर्म तो मेरे साथ है। एक दिन फिर आभा दिखाई दी उसने कहा मैं यश ब्रह्मकीर्ति हूँ। मैं भी जा रहा हूँ। सेठ जी ने जाने दिया। एक दिन पुनः एक आभा

दिखाई दी। उसने कहा मैं सत्य हूँ, मैं भी जा रहा हूँ। तब सेठ जी ने दोनों हाथों को गैलाकर गिड़गिड़ाते हुए कहा मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा। हे सत्य! मैंने एक तेरे कारण सबको जाने दिया बल्लक्ष्मी, पुण्य, कीर्तिऋ यदि तू चला गया तो मेरा जीवन बेकार है। सत्य को सेठजी की बात मानकर अपनी हार माननी पड़ी और जैसे ही सत्य का डंका बजा तो एक के बाद एक सारी चीजे वापिस आ गईं। सत्य कीर्ति को खींचता है, कीर्ति से लक्ष्मी और लक्ष्मी से दान पुण्य आ गया और उसका धर्म भी वापिस आ गया। इस प्रकार आखिर में सत्य धर्म की विजय हुई।

प्यारे बन्धु! आप क्या चाहते हैं? संसार का सभी प्रकार का सुख या मोक्ष जो भी चाहते हैं एक मात्र धर्म से प्राप्त हो सकता है किन्तु धर्म हीन नर पशु की भाँति कहा गया है।

“धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना नर तिर्यच समान॥”

सत्य कैसे आदमी को पतित से पावन बना देता है। कहानी इस प्रकार है-एक धर्मात्मा सेठजी का एक मात्र पुत्र था। कहावत है “दियातले ही अंधेरा होता।” युक्ति को चरितार्थ करते हुए उनका पुत्र सप्त व्यसनों में पारंगत था। नगर में मुनिराज आये दर्शन करने के लिए सेठजी अर्घ्य लेकर चरणों में पहुँचे। मुनिराज के रोज-रोज दर्शन हेतु जाने लगे। अवसर पाकर मुनिराज के चरणों में अपने पुत्र के सम्बन्ध में चर्चा की। मुनिराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि ठीक है, लड़के को हमारे पास भेज देना। सेठजी लड़के को बार-बार मुनिराज के पास जाने को कहते किन्तु व्यसनों में नसे रहने के कारण जा नहीं पाता था।

एक बार सेठजी ने बहुत डांटा, तब जाकर लड़का मुनिराज के पास घूमते-घूमते पहुँच गया। मुनिराज ने लड़के के सिर पर आशीष स्वरूप हाथ रेरते हुए कहा कि तुम्हारे पिताजी तुम्हारे

कारण कभी दुखित है। तुम कम से कम एक नियम ले लो जिससे आपको थोड़ी बहुत शांति मिले। लड़का चुप रहा। मुनिराज ने कहा बेटा जुआ छोड़ दो लड़के ने कहा नहीं, शराब छोड़ दो-नहीं, माँस छोड़ दो-वह भी नहीं, शिकार छोड़ दो-वह भी नहीं छोड़ सकता क्योंकि इनसे बहुत आनन्द आता है। गुरु ने कहा तुम क्या छोड़ सकते हो? जो तुम छोड़ सकते हो उसे छोड़ दो। अपने जीवन में एक छोटा सा नियम तो ले ही लेना चाहिए। लड़के ने कहा ठीक है महाराज आज से ही मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा अर्थात् असत्य का त्याग करता हूँ। सत्यवचन का नियम लेकर आशीर्वाद उपरान्त लड़का घर आ गया।

शाम को वह चल पड़ा वेश्या के यहाँ कई मित्रों साथ में थे। किसी ने पूछा कहाँ जा रहे हो, उसने कहा वेश्या चमेली देवी के यहाँ। मित्र बोले तुम्हें शर्म नहीं आती। लड़का बोला, मैंने तो मुनिराज के सामने सत्य बोलने का नियम लिया है। मित्रों ने कहा बड़ा आया सत्याचारी हरिश्चन्द्र का बेटा चल भाग यहाँ से उसे अपनी मित्र मण्डली से बाहर कर दिया।

दूसरे दिन अपने जुआरी मित्रों के साथ जुआ के अड्डे पर जा रहा था। किसी ने पूछा कहा जा रहे हो, तो उसने कहा चौराहे पर कल्लन दादा के जुए के अड्डे पर। मित्रों ने कहा क्यों रे मूर्ख तुमने उनको क्यों बताया। अभी पुलिस को खबर पहुँच जायेगी। तो सबके सब हवालात में होंगे। जुआ मण्डली ने उसे अपने साथ से अलग कर दिया।

तीसरे दिन चोरी के लिए तैयार हुआ। मित्राण भी साथ जा रहे थे। वह सभी रूप बदलकर सेठ छगनमल के यहाँ पर चोरी के लिए निकल पड़े। किसी राहगीर ने पूछा भैया क्या तुम लोग प्यारेलाल चौराहे जा रहे हो। उसने कहा हम तो सेठ छगनमल के यहाँ चोरी करने जा रहे हैं। मित्रों ने सुना तो उनके कान खड़े हो

गये और वहाँ से भाग निकले वह व्यक्ति भी उनके पीछे दौड़ते-दौड़ते अंधरे स्थान पर पहुँच गया। सभी लड़कों ने उसे क्रोध में दुत्कार कर कहा। बड़ा सत्यवादी है। भागे नहीं होते तो अभी जेल में सड़ रहे होते। उन्होंने भी उस लड़के का साथ छोड़ दिया। सेठजी के लड़के का अब सभी व्यसन वालों ने साथ छोड़ दिया। लड़का अब बहुत परिवर्तित हो चुका था। धर्म न्याय के अनुसार अपने पिता के व्यापार में हाथ बटाने लगा। वह मुनि श्री का परमभक्त बन गया और भक्त तो बना ही साथ में एक बहुत बड़ा धर्मात्मा बन गया।

सारांश यह है कि जीवन में एक सत्य आ गया तो बस वह धर्मी हो गया अर्थात् सत्य धर्म इन्सान को सद् इन्सान बना देता है। किन्तु

हम जो कहते वैसा आचार नहीं है,
जिसके पास हम रहते उसी से प्यार नहीं है।
धर्म का झंडा लिए हम नारे लगा रहे हैं
परन्तु प्रेम दया मित्रता का व्यवहार नहीं है।

“सत्यं शिवम् सुन्दरं” अर्थात् जो सत्य है वही शिव और सुन्दर है। हाँ सत्य हमेशा कड़वा होता है, लेकिन कड़वी दवाई से ही बुखार ठीक होता है। अतः कड़वे सत्य से ही झूठ रूप रोग का शमन हो सकता है। अतः आचार्यों ने कहा कि सदा सत्य बोलो। सत्य की सदा विजय होती है।

मृषा बचन बोलते हैं, लोक में अज्ञानी जीव
मृषा वचन से अब तो, पाना विश्राम है।
पुद्गल की वर्गणा से बनते हैं वर्ण सब
शब्दों से भिन्न शब्द आत्मा निष्काम है
शब्दों की श्रृंखला को मान रहे सत्य लोग

शब्द तो अचेतन है शब्द आत्म राम है
सत्य विशद खोजिए अपने ही अन्तर में
सत्य तो चैतन्य अनुभूति का नाम है॥

सत्य दृष्टि का सार सत्य निर्बल का बल है।
सत्य सत्य है सत्य नित्य है अटल अमल है॥
जीवन सर में सरस सत्य का खिले कमल है।
क्षमा नम्रता ;जुता शुचिता का सत् संबल है॥

सत्य ज्ञान का सार सत्य जिन धर्म है उत्तम।
सत्य नित्य है सत्य मृत्यु है सत्य नरोत्तम॥
भूलो मत तुम सत्य सत्य है सर्व जगोत्तम।
सत्य सत्य से मृत्यु त्यागकर हो पुरुषोत्तम॥

कलयुग में पैर हीन को भी पहाड़ चढ़ते देखा।
अपने भाई से भाई को भी लड़ते देखा॥

आज जो कुछ हो रहा है वह भी कम है।
आज तो सत्य को भी सूली पर चढ़ते देखा॥

ॐ ऋं श्री उत्तम सत्य धर्मान्नाय नमः

उत्तम संयम धर्म

आत्म का सार है	संयम
समता का मधुर मकरन्द है	संयम
सुख शान्ति का स्रोत है	संयम
आनन्द की अनुभूति देने वाला है	संयम
एक अदृश्य सिंहासन है	संयम
मानव जीवन की उत्तम सुगन्ध है	संयम
मानव जीवन का उत्तम उपहार है	संयम
मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढ़ी है	संयम

मोक्ष मंजिल के लिए दिशा सूचक यंत्र है	संयम
जीवन रक्षा के लिए कलश है	संयम
कर्म बेड़ी काटने के लिए तलवार होता है	संयम
जीवन की फलता का नाम है	संयम
आत्म स्वभाव को पाने का नाम है	संयम
निज स्वभाव में रमण करता है	संयम
निज शक्ति को उजागर करता है	संयम
नव जीवन का सृजन है	संयम
संकल्प की साधना का पूर्ण होना है	संयम
जीवन विकास का सूर्योदय है	संयम
स्वयं की अनुभूति है	संयम
मानव जीवन का पावन बसन्त है	संयम
पावन दीपावली का प्रारम्भ है	संयम
सम्यक्ज्ञान का स्वच्छ प्रकाश है	संयम
वीतरागता का आदि बिन्दु है	संयम
मुक्ति वधू का पावन आमन्त्रण है	संयम
विशद जीवन का रूपान्तरण है	संयम

“संयमनं संयमः” अथवा “व्रत समितिकषाय दण्डेन्द्रियाणां धारणानुपालन निग्रह त्याग जया संयमः”

संयमन को संयम कहते हैं, संयमन अर्थात् योग को आत्माभिमुख करना। पाँच व्रतों का धारण समितियों का पालन क्रोधादि कषाय का निग्रह, तीन दण्ड एवं योग का त्याग पाँच इन्द्रियों के विषयों को जीतना संयम है। क्षमादि की भाँति संयम में भी उत्तम शब्द वीतरागता की सत्ता का सूचक है।

संयम-सम् + यम दो शब्दों को मिलाकर बना है। सम =

बराबर, समान + य [REDACTED] के लिए लिया गया संकल्प अर्थात् संयम वह है जो जीवन पर्यन्त के लिए अन्दर में समता भाव उत्पन्न कराये।

संयम क्या है? आदर्श जीवन ही संयम है। जहाँ पर व्यक्ति के जीवन में आदर्श आ जाते हैं तब समझना चाहिए कि संयम आ गया। आङ्ग श्री वसुनन्दी स्वामी ने कहा है-

जो जीव रक्खण परो, गमणागमणाई सव्वकज्जेसु।
तिण छेयं पि ण इच्छदि संजम भावो हवे तस्स॥

जो गमन आगमन आदि सभी कार्यों में जीवों की रक्षा में तत्पर हैं तृष के भी छेद करने की इच्छा नहीं रखता है उस मुनि के उत्तम संयम होता है।

ऐसे संयमरूपी रत्न की सुरक्षा ही जीवन का सार है। वह उत्तम संयम कैसा है? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्य कहते हैं-

वदसमिदिकसायाणं दंडण तहिं दिंयाण पंचणहम्।
धारणपालणणिग्गह चागु जओ संजमो भणिओ॥गो.जी.॥

व्रतों को धारण करना, समितियों का पालन करना कषायों का निग्रह करना, मन वचन काय की असुभ प्रवृत्तियों का त्याग करना तथा पंचेन्द्रियों व मन को वश में रखना संयम कहलाता है। सम्यग्दर्शन सहित अनादि अनन्त अहेतुज्ञान दर्शन स्वभावमय निजात्मा शु) की ओर सतत दृष्टि रखन उत्तम संयमधर्म हैं।

वह संयम धर्म देह की प्रवृत्ति में नहीं, किसी क्षेत्र विशेष में नहीं, किसी काल में नहीं किन्तु आत्मा के परिणाम में स्थित है, अतः संयमी बनने के लिए आत्म परिणामों को विशु), विशु)तर एवं विशु)तम बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिए। उत्तम संयम धर्म

निश्चय से आत्मा का स्वभाव ही है।

संयम के 2 भेद हैं १. द्रव्य संयम २. भाव संयम। चरणानुयोग के अनुसार निर्ग्रन्थ मुद्रा धारणकर महाव्रतादि का पालन करना द्रव्य संयम कहलाता है। संयमघाती प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होने पर आत्मा में जो विरक्ति के भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें भाव संयम कहते हैं।

ये दोनों संयम परस्पर सापेक्ष हैं। द्रव्य संयम के बिना भाव संयम नहीं हो सकता तो भावसंयम के बिना द्रव्य संयम भी कार्यकारी नहीं होता अर्थात् मात्र द्रव्य संयम से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

संयम के और भी दो भेद बताये हैं-

1. उपेक्षा संयम 2. अपहृत संयम।

निर्दोष रीति से तीनों गुणियों का पालन करने वाले, शरीर की ममता से रहित, तीव्र उपसर्ग के आने पर भी आत्मध्यान से चलायमान न होने वाले उत्तम संहनन के धारी, वीतरागी साधुजन उपेक्षा संयम के पात्र होते हैं।

अपहृत संयम भी दो प्रकार का है-1. प्राणी संयम 2. इन्द्रिय संयम। इनमें प्रथम के त्रि तीन प्रकार हैं-1. उत्तम 2. मध्यम 3. जघन्य।

जब साधुजन आहार के लिये, शौच के लिये या ग्रामान्तर विहार के लिए गमन करते हैं तब यदि भूमि पर त्रस स्थावर जीवों का बाहुल्य हो तो वे उस मार्ग को छोड़कर अन्य प्रासुक मार्ग से गमन करते हैं उसे उत्तम प्राणी संयम कहते हैं।

2. त्रस आदि जीवों को पिच्छिका से दूर कर गमन करना

मध्यम प्राणी संयम है। 3. पिच्छिका के अतिरिक्त किसी मृदु उपकरण से मार्गस्थ जीवों को हटाकर गमन करना, जघन्य अपहृत प्राणी संयम कहलाता है।

इन्द्रिय अपहृत संयम भी तीन प्रकार का होता है-

1. उत्तम 2. माध्यम 3. जघन्य।

1. जन्मान्तर के प्रबल शुभ संस्कार के कारण इन्द्रिय विषयों की अभिलाषा ही उत्पन्न नहीं होवे उसे उत्तम अपहृत संयम कहते हैं।

2. इन्द्रिय विषयों की पूर्ण सामग्री मिलने पर भी इन्द्रिय विषयों के सेवन की इच्छा जागृत न होना मध्यम अपहृत संयम है।

3. सद्गुरु के उपदेश से इन्द्रिय विषयों से वैराग्य होना, जघन्य अपहृत संयम है। कहा है-

“काय छहो प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मनवश करो।
संयम रतन संभाल, विषय चोर बहुत रित हैं।”

संयम के और भी 2 भेद हैं-1. निश्चय संयम 2. व्यवहार संयम। 1. निजात्मा पर दयाकर विषय कषायों से एवं विभाव भावों से दूर रहकर आत्मपरिणामों को (विशु) रखना निश्चय संयम कहलाता है। पर प्राणियों पर दया के भाव रखना व्यवहार संयम है। इसको स्पष्ट करते हुए कहा है-

कथा-सर्वजित नाम एक राजा था। प्रजा उसे सर्वजित कहती थी। किन्तु राजा की माता उसे सर्वजित नहीं कहती। एक दिन राजा अपनी माता के पास आकर कहता है-हे माँ! तुम मुझे सर्वजित क्यों नहीं कहती? पुत्र के ऐसे वचन सुनकर माँ ने कहा-“अभी तू सर्वजित कहाँ हुआ है?” तब पुत्र ने माँ से कहा कि मैं सर्वजित

कैसे नहीं हूँ? समस्त देशवासी, विदेशवासी सभी हमारी आज्ञा के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं अतः मैं सर्वजित हूँ। तब माँ ने कहा-तेरा महान् शत्रु तेरे मन में स्थित है, जिस दिन तू इन्द्रिय विषयों की आसक्ति को जीत लेगा उस दिन से मैं तुझे सर्वजित कहूँगी, अन्यथा नहीं। माता के ऐसे वचन सुनकर राज पुत्र गर्व छोड़कर मन और इन्द्रियों को वश में करने में कटिब हो गया। सच्ची माता ऐसी ही होनी चाहिए जो हितोपदेशदेकर अपनी सन्तान को संयम में प्रवृत्ति करावे।

इन्द्रिय विषय सेवन खाज के समान है। जैसे-जैसे खाज खुजलाई जाती है, वैसे-वैसे खुजली की वृत्ति होती है। यही स्थिति इन्द्रिय विषयों की है। प्रचुर मात्र में विषय सेवन से शरीर की शक्ति क्षीण होती है, दृष्टि मन्द होती है, शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है, अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं आदि। इन्द्रिय संयम से समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। ये इन्द्रिय विषय विषधर से भी अधिक भयंकर हैं। विषधर तो एक भव के जीवन को ही नष्ट करता है किन्तु इन्द्रिय विषय तो अनन्त भव तक दुःख दायी है।

संयम के लिए इन्द्रियों और मन को संभालने की आवश्यकता है। वास्तविक संयम तो साधुओं के पास ही होता है। सुकुमाल की एक से बढ़कर एक 32 रानियाँ थी लेकिन जब उन्हें वैराग्य हुआ, उनके अन्दर संयम आया तो सभी देखते ही रह गये। संयम धारण करके राजकुमार सुकुमाल मुनिराज सुकुमाल बन गये। उपसर्ग सहन करते हुए मोक्षगामी हो गये। ये है संयम धर्म की महिमा। राजकुमार नेमीनाथ बारात लेकर शादी करने गये थे किन्तु साधु बन गये और आत्मानन्द में लीन हो गये। कहा भी है-

साधु का पद दूर है, जैसे पेड़ खजूर।

चढ़े तो मीठे नल चखे, गिरे तो चकनाचूर॥
संयम धर्म की गंगा, जा में पाप मैल सब धो जा।
भारी हो रहा बहुत दिनों से, हल्का करले बोझा॥

संयम की महिमा को गुरुवर ने इस प्रकार कहा है-

संयम धारण करो, बस यही सार है।
बिना संयम के ये, जीवन बेकार है॥

सूर्य अस्त जो हुआ, रात को सो गया।
प्रातः होते ही, विषयों में खो गया॥
इस तरह स्वप्न में, जीवन खो दिया।
ध्यान आत्म का हमने कभी न किया।
भोग छलते रहे, नहीं मानी हार है॥
बिना संयम के, ये जीवन बेकार है।
आश का दीप, हर पल जलता रहा।
मोह के ही मधुर, गीत गाता रहा॥
अमृत के धोखे, हमने जहर ही पिया।
मद में भूले रहे, खुद को धोखा दिया॥

एक संयम ही जीवन का आधार है।
बिना संयम के यह जीवन बेकार है॥

संयम को पाने के लिए असंयम और आशक्ति का विर्सजन करना होगा तभी हमारा जीवन कुन्दन बन सकता है। असंयमी व्यक्ति कितना गिर जाता है इस सम्बन्ध में एक घटना आती है।

एक राजा था वह जीभ का बहुत चटोरा था। एक बार वह अपने पुत्र को गोद में बैठाकर खीर खा रहा था। पुत्र ने लघुशंका कर दी जो थाली के हिस्से में खीर में जा गिरी। राजा ने सोचा किसी ने देखा तो नहीं है और उतने स्थान की खीर

अलग करके शेष खा ली। दूसरे दिन राजमहल में नर्तकी का नृत्यगान चल रहा था। नर्तकी गा रही थी “ बता दई हों राजा राजकुमार की बतियाँ।” राजा ने सोचा इसे पता चल गया है। उसने चुप रहने हेतु इनाम दिया लेकिन नर्तकी ने सोचा राजा को यह गाना बहुत पसन्द आया है। वह बार-बार वही गाना दोहराने लगी। अन्त में राजा परेशान होकर बोला। हाँ-हाँ बता दे क्या बतायेगी, यही न कि मैंने राजकुंवर की लघुशंका गिरी हुई खीर खाई है। इस तरह व्यक्ति इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपनी ही हंसी उड़वाते हैं।

आज व्यक्ति इन्द्रियों का गुलाम बनकर रह गया है। नलतः संयम धारण करने में घबराता है। मुनिराजों से छोटे-छोटे नियमों को धारण ब्रह्मसंयम धारण कर करने में पसीना आता है, असमर्थता प्रकट करता है, यह सब इन्द्रियों की परतन्त्रता नहीं तो क्या है? किसी विद्वान ने कहा है कि-

घुटनों के बल चलते-चलते पैर खड़े हो जाते हैं।
छोटे-छोटे नियम ब्रह्मसंयम एक दिन बहुत बड़े बन जाते हैं॥

एक कथानक आता है। एक राजा था वह सोते समय बिस्तर में नलों को बिछवाकर सोता था। एक बार मालिन ने जैसे ही नल बिछाये राजा कानि देर तक नहीं आया, तब उसने सोचा क्यों न मैं ही लेटकर देखूं। लेटते ही वह गहरी नींद में सो गई। राजा जैसे ही आया नलों के बिस्तर में मालिन को सोते हुए पाया। क्रोध के कारण गरजते हुए बोला तेरी! ये मजाल मेरे बिस्तर पर सो रही है और आग बबूला हो गया। कोड़ा मंगवाकर लड़की पर कोड़े बरसाना शुरू कर दिया। जैसे ही कोड़ा पड़ा तो वह हँसने लगी। राजा को गुस्सा आया। उसने लड़की को जोर से पीटना शुरू कर दिया। राजा को लड़की के हँसने का कारण समझ में

नहीं आया तो राजा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा! तू हँस क्यों रही है? मालिन लड़की बड़े विनम्रता से बोली हे राजन! मैं 1 घण्टे ही इस नूलों के बिस्तर पर सोई तो मुझे इतने कोड़े खाने पड़े और जो रोज-रोज उस पर सोता है उसे कितने कोड़े खाने पड़ेंगे इस बात को सोचकर मेरे लिए हँसी आ रही है। तत्पश्चात् राजा को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसे अपना गुरु मान लिया। तूने मेरे हृदय के छाये अन्धकार को विवेक के प्रकाश से दूर कर दिया है। मुझे कर्तव्यों का बोध करा दिया अर्थात् जीव जब एक स्पर्शन इन्द्रिय के असंयम के कारण इतना पाप कर सकता है तो पाँचों इन्द्रियों एवं मन के अधीन रहकर असंयमित जीवन में कितना पाप करते होंगे। सार यह है कि जीवन रहते हुए अपने जीवन में यथायोग्य संयम धारण करना चाहिए।

संयम के महत्व को आगम में कई प्रसंगों में वर्णन किया गया है। भगवान आदिनाथ के जीव को पूर्व भव का स्मरण आता है। वह जीव जब राजा वज्रजंघ की पर्याय में था। माली ने एक पुष्प लाकर एक दिन राजा को दिया। राजन् ने नूल को देखा तो उसमें भौरा मरा पड़ा था। उसे देखकर उन्हें वैराग्य हो गया। संसार की नश्वरता और असंयम इन्द्रियों की गुलामी से उनकी आँखें खुल गईं। अपने बड़े पुत्र अमिततेज को बुलाया और राज ग्रहण करने को कहा तो पुत्र ने कहा आप मुझे राज्य क्यों देना चाहते हैं? तब राजा ने कहा यह नश्वर और दुःखदायी है। तब पुत्र ने कहा आप पुत्र का हमेशा भला चाहते हैं लेकिन जिसे आप बुरा दुःखदाई समझ रहे हैं वही हमें देना चाहते हैं? हमने तो सुना है कि हर पिता अपने पुत्र का भला चाहता है फिर दुःखदाई राज्य अपने पुत्र को देना चाहते हैं यह तो मेरी समझ में नहीं आया। राज निरुत्तर हो गया। राजा ने अन्य पुत्रों को समझाया तो सभी ने अमित

तेज की भाँति जवाब दिया। राजा ने अमित तेज के पुत्र जो कि एक वर्ष का था, राज्याभिषेक किया और राजा ने हजारों पुत्र, हजारों रानियों और सैकड़ों राजाओं के साथ संयम धारण किया और चल दिये मुनि आर्यिका दीक्षा लेकर वन में। उस परिवार को देखकर देव लोकवासी भी जय-जयकार करने लगे।

संयम द्धव्रतऋ या नियम एकार्थवाची हैं। गणित का वृत्त और धर्म का व्रत एक जैसा ही होता है। जिस प्रकार वह वृत्त संकेत देता है कि 360 अंश का कोण पूर्ण होते ही वृत्त बन गया उसी प्रकार संयम रूपी व्रत से जीवन में हमारा उत्थान हो सकता है। यदि हमें प्राप्त हो जाता है तो उसका जीवन में 360 अंश अर्थात् 360 दिन अर्थात् पूरा वर्ष संयम व्रत के नियमों में परिपूर्ण होता है, तब हम सभी कहते हैं कि ग्लाँ व्यक्ति का जीवन संयमित है। संयमी अपने जीवन को तो प्रकाश मय बनाकर मोक्ष प्राप्त करता है साथ ही अपने परिवार मुहल्ला, नगर, जिला, प्रदेश, देश, विश्व का पथ प्रदर्शक होता है किन्तु आज की दुनियाँ में संयमी और ज्ञानी पुरुषों की कीमत नहीं है। एक संयम धारी ज्ञानी व्यक्ति का अनुभव की एक रोचक घटना याद आती है।

नूटी आँख विवेक की, कहा करे जगदीश।
कँचनिया को तीन सौ मनीराम को तीस।

पण्डित मनीराम जी ने स्पष्ट किया कि वे एक बार विज्ञान कराने एक स्थान पर गये। विधान समारोह में नृत्य हेतु एक वेश्या द्धनृत्यांगनाऋ को बुलवाया था। विदाई समारोह में पण्डित मनीराम जी की विदाई 30 रुपये द्धतीसऋ से की। जबकि नाचने वाली नृत्यांगना को 300 द्धतीन सौऋ रुपये से विदाई की। तब उन्होंने कहा कि वास्तविकता में आज असंयम का बोल बाला है। धर्ममय जीवन वालों के महत्व को आज के असंयमी जीवन वालों

ने पहचाना नहीं है। धर्म संयम के काम पर 30 रुपये खर्च नहीं करेंगे। जबकि असंयम के कामों में 300 से 3000 व्यय करने को तैयार हो जायेंगे। कभी परिचय सम्मेलन या विवाह सम्मेलन में लाखों खर्च करेंगे। सभी काम छोड़कर रहेंगे। यदि विधान प्रतिष्ठा आदि हो तो समय नहीं मिलता और खर्च के नाम पर डरते हैं। मूर्खता देखो वास्तविकता समझने का प्रयास ही नहीं करते। लोग असंयमी रहते हैं या संयम को बड़ी आसानी से छोड़ देते हैं। इन्द्रिय के वशीभूत इन्सान की क्या दशा होती है इस सम्बन्ध में कहा है-

अलि पतंग मृग मीन गज, विषय एक-एक पर मरते हैं।
नतीजा क्यों न पायेंगे विषय पाँचों जो करते हैं॥

स्पष्ट होता है कि जब प्राणी एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होकर मरते हैं तब जो पाँचों इन्द्रियों का सेवन करते हैं तो उनका क्या हो रहा है और क्या होगा?

पंचमकाल की असंयम के महत्व की एक घटना इस धर्म में स्पष्ट करना अति आवश्यक होगा। जिससे पूर्णतः स्पष्ट होता है कि संयम हमारी गति को कैसे पंचम गति में परिवर्तित करने में सहयोग करेगा।

है संसार यहीं अनादि से, जीव महा दुःख पाते हैं।
कर्म मदारी जीव वानरों को, हाः नाच नचाते हैं।

एक राजा था, बड़ा भोग विलासी था। हमेशा भोगों में लिप्त रहता था। उसकी एक पुत्री थी जो धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। वह बहुत सुन्दर और मनोहर अंगों वाली थी। वह एक दिन जिन प्रभु का अभिषेक कर राजा को अभिषेक देने गई राजा की कुदृष्टि उसके अंगों पर पड़ी तो उस पर मोहित हो गया और उसे प्राप्त करने की कोशिश में लग गया। सभी के सामने राजा ने पूछा

कि राज्य में सबसे मनोहर वस्तु किसकी होती है? सभी ने उत्तर दिया राजा की। उसी समय मन्त्री ने खड़े होकर कहा कि राजन् इसका उत्तर पहले जो दिगम्बर साधु सत्यव्रती होते हैं उनसे पूछा जाए। साधु से पूछने पर उन्होंने कहा कि 1. माँ 2. पुत्र 3. पुत्र को छोड़कर अन्य वस्तु पर राजा का अधिकार है। राजा क्रोधित हो वहाँ से चला गया और लोगों के कहे अनुसार पुत्र से विवाह कर लिया। उससे एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्र की शादी कुछ समय बाद पड़ौसी राज के पुत्र के साथ हो गई। लेकिन पुत्र छोटा 10-12 वर्ष का था। एक बार रक्षा बन्धन पर सभी पड़ौस के बालक खिलौने से खेल रहे थे वे कह रहे थे खिलौना मेरे नाना, मेरे मौसा, मेरे मामा आदि के यहाँ से आया है। बालक कार्तिकेय अपनी माँ के पास पहुँच गया और माँ से पूछा माँ हमारे सभी मित्रों के लिए किसी के मामा किसी के नाना या किसी के मौसा यहाँ के से खिलौने आये हैं हमारे मामा या नाना कहाँ हैं, हम भी उनके पास जाएंगे सुनकर माँ ने टालने की कोशिश की किन्तु बालक नहीं माना और जिद करने लगा बहुत समझाने पर नहीं माना तो माँ ने गुस्से में आकर कह दिया तेरे पिता ही तेरे नाना है। यह सुनकर बालक बहुत दुःखी हुआ और उसने पूछा ऐसा कैसे हो सकता है तब माँ ने सारी घटना बेटे को सुना दी। बेटे ने मुनिराज के बारे में जानकारी ली और मुनिराज का पता पूछकर जंगल में चला गया और अध्ययन करने के बाद मुनि बन गया। एक दिन मुनिराज कार्तिकेय जो विहार द्धगमनऋ करते हुए अपने बहिन के नगर पहुँच गये। बहिन ने मुनिराज को देखा तो अति प्रसन्न हुई। एक तो मुनिराज दूसरे भाई दौड़कर उनके चरणों में पहुँच गई।

जब राजा ने झरोखे से देखा तो अत्यन्त क्रोधित हुआ और डाँटते हुए कहा रानी को शर्म नहीं आती, एक नग्न बद्धिगम्बरऋ व्यक्ति के पास खड़ी है? मंत्रियों ने राजा के क्रोध को अग्नि में घी डालने का काम किया और कहा जाने ये नंगे कहाँ-कहाँ से चले आते हैं और लोगों को बहकाते हैं आदि सुनकर राजा का क्रोध बढ़ गया। तब सैनिकों को आदेश दिया कि इसकी बद्धमुनिराजऋ चमड़ी शरीर से निकाल ली जाये। आदेश सुनकर सैनिक थरा गये। बद्धआश्चर्यचकितऋ लेकिन आदेश का पालन तो करना ही था। अतः उन्होंने चिमटियों से चमड़ी को खींचना प्रारम्भ कर दिया। मुनिराज के शरीर से खून एवं माँस की धारा बहने लगी लेकिन उनने सम्+यम् अर्थात् संयम समता रूपी धन को धारण किया। सारी चमड़ी शरीर से अलग कर दी गई लेकिन मुनिराज डिगे नहीं। वह चिंतन में डूब गये।

जब अंग भर से मनुज के चमड़ा अलग हो जाएगा।
तो रोंगटों का छिद्रगण कैसे नहीं खो जाएगा॥

उन्होंने संयमपूर्वक जीवन समाप्त किया, उनकी समाप्ति हो गई। ये ही संयम जीवन की महिमा। उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कार्तिकेयानुप्रेक्षा आज हमारे आपके सामने हैं, जिसमें 12 भावनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। वह महान् मुनिराज का महान् संयम इतिहास की गाथा बनकर अमर रहेगा।

इन्द्रियों को रोधकर मन को भी शोधकर चेतन को बोधकर आत्मा को ध्याइये भूमि निहार के पग को सम्हार के षट्काय जीवों का जीवन बचाइये हितमित विचार के हिरदय में धार के मीठे वचन निज मुखते सुनाइये

राग द्वेष टार के किरिया सुधार के, समता को धार के संयम को पाइये

चन्दा पर जितनी बार भी बन्धु चालू की गई चढ़ाई है। बदले में उतनी बार मनुज के धूल हाथ में आई है॥ यदि ऐसी अन्वेषण शक्ति निज पर कहीं जमा लेता। तो चन्द्रलोक को क्या कहते हिर सि) शिला को पा लेता॥

पाप से भीति के बिना भगवान से प्रीति नहीं होती। श्र)। के बिना आत्मा की प्रतीति नहीं होती॥ सम्यक्ज्ञान और संयम की ज्योति अलौकिक है। संयम के बिना आत्मा की अनुभूति नहीं होती॥

लोगों की रूठी हुई किस्मत को मनाना है हमें। मोह नींद में सोने वालों को जगाना है हमें॥ घृणा और असंयम के गंदे वातावरण में बहुत जी लिया। अब संयम की पावन गंगा में नहाना है हमें॥

ॐ ऋषीं श्री उत्तम संयम धर्मान्नाय नमः

उत्तम तप

महान् ऊर्जा शक्ति है।	तप
संयम की परीक्षा है।	तप
शोधक यंत्र है।	तप
सूर्य का प्रकाश है।	तप
अन्तर आत्मा की पुकार है।	तप
निखार की कला है।	तप

रहस्यों की खोज है।	तप
स्नेह का विस्तार है।	तप
कषायों पर प्रहार है।	तप
सरलता की राह है।	तप
चेतन अचेतन की भिक्ता है।	तप
विज्ञान की पूर्ण यात्रा है।	तप
परिणामों की शु() है।	तप
कषायों पर विषय है।	तप
आत्म शोधन है।	तप
तिरने की कला है।	तप
आत्मा का श्रृंगार है।	तप
होश में आना है।	तप
मोक्ष द्वार की चाबी है।	तप
कर्म जलाने को अग्नि है।	तप
समिति पालन करना है।	तप
स्वयं से स्वयं का मैल है।	तप
कर्म मैला सफ करने हेतु तेजाब है।	तप
तप स्वरूप चिंतन का नाम है।	तप
तप इन्द्रिय जय का नाम है।	तप
इच्छाओं का शमन है।	तप

इह पर लोए सुहाणं णिखेक्खो खो जो करेदि सम भावो।
विविह काय क्लेशं तव धम्मो णिम्मलो तस्स।।त.वि.ता 35॥

जो इस लोक परलोक सम्बन्धी सुखों की अपेक्षा न करके
समता भाव धारण करता है, विविध प्रकार से काय क्लेश करता
है उस साधक के निर्मल तप धर्म होता है।

समस्त राग [redacted] रूपे प्रतपनं विजयनं
तपः अर्थात् समस्त रागाद पर भावा का इच्छा त्यागकर स्वस्वरूप
में प्रतपन करना विजयन करना तप है। 'इच्छा निरोधो तपः' इच्छा
निरोध को तप कहते हैं। "कर्म क्षयार्थं तप्यते इति तपः" कर्म क्षय
हेतु जो तपा जाता है वह तप है। तप के साथ लगा हुआ उत्तम
शब्द वीतरागता की सत्ता का सूचक है कहा भी है-

सम्मत्त विरहिया णं, सुट्ठुवि उगंतवंचरंताणं।
ण लहन्ति वोहि लाहं, अवि वाससहस्स कोडीहिं॥

यदि कोई सम्यक्त्व के बिना करोड़ों वर्षों तक उग्र तप भी
करें तो भी वह बोधि लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

योग्योपादान योगेन दृषदः स्वर्णता मताः।
द्रव्यादि स्वादि संपत्ता वात्मनोप्यत्मता मता॥

जिस प्रकार पत्थर में सोना रहता है लेकिन उसका शुभ
कर्म का उदय नहीं आया तो वह जमीन में ही दबा रहा पुनः बाहर
आया तो आपके पास आ गया और उसे फिर तोड़ा गया और वह
ठोकरे खाते खाते भटकता रहा। बड़ी-बड़ी ठोकरे खाने के बाद
और गलने के बाद ही वह स्वर्ण रूप में परिवर्तित हो पाता है और
सोलह ताप के बाद कीमती बन पाता है।

तप का महत्व बड़ा अपार है। जब तक तपा नहीं जाता है
तब तक उत्कृष्टता प्राप्त नहीं होती है। दूध को तपाकर पहले छाँछ
डालकर दही जमाया जाता है फिर मथकर नवनीत निकाला जाता
है। फिर अग्नि में तपाकर घी प्राप्त होता है। जिस प्रकार शु() घी की
प्राप्ति के उपरान्त उसे दूध में पुनः परिवर्तित नहीं किया जा सकता
उसी प्रकार आत्मा को शु() स्वरूप में लाकर मोक्ष पद प्राप्त कर
लिया जाता है तो फिर संसार के जन्म, जरा-मृत्यु की पीड़ा में नहीं

लाया जा सकता है। यथा घी दूध की विशु) अवस्था है तो मोक्ष आत्मा की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है।

भारत वर्ष में बड़े-बड़े तीर्थकर केवली, आचार्य, मुनि हो चुके हैं। वर्तमान में तीन परमेष्ठी मौजूद हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु। जब हम दूध गरम करते हैं तो अग्नि से दूध को सीता गरम नहीं करते अन्यथा दूध से अग्नि भी बुझ जाती है बल्कि बर्तन में रखकर दूध को तपाते हैं। उसी प्रकार शरीरके विषयों का त्याग ही तप है। शरीर रूपी बर्तन के माध्यम से आत्मा रूपी दूध को तपाया जाता है। तप की महिमा बताते हुए एक विद्वान ने कहा है कि

लड्डू-लड्डू बोलते, जीभ न चखती स्वाद।
पानी-पानी बोलते कभी न बुझती प्यास॥
सारा जीवन खो दिया शास्त्र पठन्त पठन्त।
हाथी सम होकर सभी, गर्दभ भार वहन्त॥

तप कोई बोलने बुलाने की वस्तु नहीं है उसे तो क्रिया रूप में शरीर के माध्यम से विषयों की इच्छा रहित भावना से तपा जाता है। केवल बोलने पढ़ने मात्र से ग्ल की प्राप्ति नहीं होती। क्रिया रूप में आचरण से ढालने पर ही यथेष्ट ग्ल की प्राप्ति होती है। संसार में सुख विषयभोग में नहीं।

“जो संसार विषै सुख होता तीर्थकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते संयम सों अनुरागे॥”

संसार की राग, विलासता, वैभव में यदि सुख होता तो तीर्थकर भगवान इन्हीं को त्यागकर संयम तप को धारण न करते अर्थात् संसार ही तो दुःखों का कारण है।

अज्ञानी जीव संयम के नाम पर कंपते हैं।
ज्ञानी जीव महामंत्र की जाप जपते हैं॥

आत्म शु) वही कर पाते हैं मेरे बन्धुओ।
जो मन वचन काय से उत्तम तप को तपते हैं॥

तप के दो भेद हैं-1. अन्तरंग द्विआन्तरिकऋ तप 2. बाह्य तप द्विबहिरंगऋ

पहले बाह्य तप द्विबहिरंगऋ को तपते हैं। उपरान्त अंतरंग तप को धारण करते हैं। जैनागम में हमेशा दोनों पक्ष लेकर कथन किया जाता है- बाह्य द्विबहिरंगऋ तप के 6 भेद हैं।

1. अनशन-मन, वचन, काय से कषाय विषय त्याग एवं चारों प्रकार का आहार त्याग करना उपवास की सार्थकता है। आकांक्षा रहित उपवास ही श्रेष्ठ होता है। रावण ने तो विद्या को सि) करने के लिए आठ उपवास किये थे। रावण ने तो घोर तप किया था यदि वह आकांक्षा रहित तप करता तो उस भव से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उपवास का स्वरूप बताते हुए आचार्य पद्मनन्दी स्वामी ने कहा-

कषाय विषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेया, शेषः लंघनं विदुः॥

2. ऊनोदर-ऊन+उदर अर्थात् भूख से कम आहार लेना या पेट खाली रखना। ऊनोदर है यह तीन प्रकार का होता है।

1. उत्तम-इसमें केवल एक चावल का दाना लिया जाता है अथवा एक ग्रास मात्र आहार किया जाता है।

2. मध्यम-उत्तम और जघन्य के मध्य की विभिन्न अवस्था रूप जो आहार ग्रहण किया जाता है।

3. जघन्य-पूरे पेट भरने द्विपूर्ण आहारऋ में एक ग्रास की कमी कर आहार करना।

3. व्रत परिसंख्यान-भिक्षा के लिए ग्रह गली वस्तु आदि का नियम लेकर निकलना। इसमें आचार्य शांतिसागर जी का नाम विशेष उल्लेख से लिया जाता है। आचार्य श्री ने व्रत परिसंख्यान के अन्तर्गत नियम लिया कि आहार चर्या के समय बैल के सींग में गुड़ लगा होगा तभी आहार करूंगा। इसी नियम पालन करने में 9 दिन हो गये, तब तक उपवास होते रहे। एक दिन काकतालीय न्याय के अनुसार विधि मिल गई। ये है तप की महिमा।

4. रस परित्याग-अर्थात् मीठा, घी, दूध, नमक, तेल, दही आदि एक या सभी रसों का त्याग करना या जो सबसे प्रिय रस हो उसे त्याग करना।

5. विविक्त श"यासन-स्वाध्याय और ध्यान की सि) के एक आसन लगाकर एकान्त तथा पवित्र स्थान पर सोना, तप करना। मुनिराज अनंतकीर्ति का तप प्रसि) है। एक बार मुनिराज विविक्तश"यासन के तप में लीन थे, उनके कमरे में जलती हुई सिंगड़ी रखी थी। रात में जाते हुए उनके तख्त के नीचे सिंगड़ी किसी ने खिसका दी तो रात में तख्त सहित मुनिराज जलकर राख हो गये। ये तप की महिमा है।

6. कायक्लेश-आत्मगुणों की प्राप्ति के लिए मन वचन काय की प्रवृत्ति को रोककर, शरीर के प्रति ममत्वभाव छोड़कर आतापन आदि तप करना कायक्लेश तप कहलाता है।

इश्क का व्यापार नहीं है मानव जीवन,
वासना का ज्वार नहीं है मानव जीवन।
मानव जीवन मिला है पुण्य कमाने को,
पाप का द्वार नहीं है मानव जीवन॥

राम की रामायण है कृष्ण की गीता है,

रामायण का अवतार नहीं है मानव जीवन।
उम्र ब्रुखिचात्र के साँचे में भी जीना पड़ता
ह
बसंत की बहार नहीं है मानव जीवन॥

गम से घबराकर पागल कहाँ जाता है,
अमृत की धार नहीं है मानव जीवन।
सदियों के बाद मिलता है बार-बार नहीं,
तपस्या है उपहार नहीं है मानव जीवन॥

अन्तरंग तप-अन्तरंग तप के भी 6 भेद हैं।

1. प्रायश्चित्त तप-प्रमाद अथवा अज्ञान से दिन भर में जाने अनजाने में कुछ गलत हो जाये तो उस गलती को स्वतः गुरु को बताना, आलोचना करना, गुरु जो प्रायश्चित्त ब्रुदण्डा दे उसे स्वीकार कर पालन करना, उस गलती को न करना प्रायश्चित्त तप है। आचार्य श्री शिवसागर जी के संघ की घटना है। एक माताजी को बिहार करते समय काँच लग गया। माताजी ने आचार्य श्री को बताया तो आचार्य श्री ने प्रायश्चित्त दिया कल का उपवास करना है। लोगों ने आचार्य श्री से जिज्ञासा वश पूछा कि माताजी को काँच लगने से कितना ज्यादा खून बह गया। उपरान्त आपने कल का उपवास क्यों दिलाया? आचार्य श्री ने तब बताया कि जमीन पर पड़ा इतना बड़ा काँच नहीं दिखा तो फिर छोटे-छोटे जीवों की रक्षा कैसे होगी? अतः उपवास दिया ताकि नीचे देखकर चलेंगी। जिससे समिति का पालन होगा और कर्म बन्ध से बच सकेंगी।

2. विनय तप-जो अपने गुणों में श्रेष्ठ व आयु में बड़े तथा सर्वपूज्य महापुरुष हैं, उनका मन वचन काय से यथायोग्य सत्कार

सम्मान विनयतप है।

रावण जब यु) में घायल होकर मरणासक्त अवस्था में था तब राम जी ने लक्ष्मण से कहा जाओ, रावण बहुत विद्वान एवं राजनीति में पण्डित है। उनसे कुछ ज्ञान की बातें और विद्या सीखकर आओ। लक्ष्मण जी गये और रावण के सिर के पास जाकर खड़े हो गये और विद्या दान माँगने लगे, रावण कुछ नहीं बोले। लक्ष्मण वापिस आ गये। राम को बताया तो राम ने पूछा कि तुम कहाँ खड़े थे। लक्ष्मण बोले भैया मैं सिर के पास खड़ा था। बस लक्ष्मण तुम्हारी यही गलती है, जाओ उनके चरणों में खड़े होकर ज्ञान माँगो। लक्ष्मण ने वैसा ही किया, तब रावण ने लक्ष्मण को ज्ञान नीति प्रदान की। यह है विनय तप की महिमा।

3. वैयावृत्ति तप-परम उपकारी मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक त्यागियों अथवा रोग या वेदना से पीड़ित वृ)ों की सेवा करना उनके कष्ट को मिटाना अर्थात् साधक की साधना में आने वाली बाधा को दूर करना वैयावृत्ति तप है।

4. स्वाध्याय तप-जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये गणतारों द्वारा समझाये हुये तथा आचार्यों द्वारा लिखे हुए, सद्शास्त्रें जिनवाणी का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, पूछना-बताना, चिंतन-मनन करना, चर्चा करना स्वाध्याय है।

5. व्युत्सर्ग तप-कायोत्सर्ग एक ही नाम है। शरीर के प्रति ममत्व नहीं रखना और ध्यान करते रहना। शरीर के ममत्व को छोड़कर 27 स्वाशोच्छ्वास में 9 बार णमोकार मंत्र का जाप करना व्युत्सर्ग तप है।

6. ध्यान तप-मन, वचन, काय तीनों योगों को संभालकर पंचपरमेष्ठी का चिंतन करना, आत्मगुणों का चिंतन करना त्रयान

तप कहलाता है। ध्यान मोक्ष का साक्षात् कारण है ध्यान के बिना आत्मानुभव संभव नहीं है कहा भी है-

ये ध्यानलीना मनुष्यः प्रधानाः, ते दुःख हीना नियमाद् भवन्ति। सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्म तत्त्वं व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव।

दुःख का निर्मूलन, परमात्म तत्त्व की प्राप्ति, मोक्ष सुख की प्राप्ति में एक मात्र कारण ध्यान है अतः मुनिजन सतत् ध्यान का अभ्यास करते हैं। ध्यान को भी अतरंग तप कहा है। सर्वार्थसि) में ध्यान का स्वरूप बताते हुए आचार्य लिखते हैं।

“चित्त विक्षेप त्यागो ध्यानम्” चित्त विक्षेप का त्याग, साम्यभाव में उपयोग का स्थिर होना ध्यान है। एकाग्र चिन्ता निरोध रूप ध्यान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है वह भी उत्तम संहनन वाले के ही होता है। मोक्षशास्त्र में बताया भी है-

“उत्तमसंहननस्य एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमन्तर्मुहूर्तात्” यहाँ प्रश्न होता है कि एकाग्रचिन्तानिरोध किसे कहते हैं? उसका समाधान भी सर्वार्थसि) में इस प्रकार है-

“नानार्थाबिलम्बेन चिन्ता परिस्पन्दवती, तस्य अशुषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन् अग्रे नियम्य एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते।”

अर्थात् नाना अर्थों के अवलम्बन से जो चित्त में परिस्पन्दन विचार परिवर्तन होता है उसे चिन्ता कहते हैं। उस परिस्पन्दन को सब प्रकार से रोक कर किसी एक विषय के चिन्तन में स्थिर करना एकाग्रचिन्ता निरोध है। यही ध्यान मुक्ति का द्वार है, श्रेष्ठ निर्जरा और संवर का कारण है।

ध्यान की सि) के लिए त्रियोग का होना अतिआवश्यक है। ध्यान से ज्ञान में प्रांजलता आती है, ज्ञान की वृ) होती है।

ध्यान को जीवन में लाने के लिए ध्यान की सामग्री क्या है? इसको भी अवश्य जानना चाहिए। गृहस्थ अवस्था में ध्यान की सि) नहीं हो सकती है कैसे अथवा क्यों? इसके समाधान में आचार्य लिखते हैं कि 5 सामग्रियों के बिना ध्यान नहीं हो सकता है।

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं वश चित्तता।
जितपरीषहत्वं च पंचैते ध्यान हेतवः॥

1. पंचेन्द्रिय विषय भोगों से वैराग्य 2. तत्त्व विज्ञान 3. अन्तरंग और बाह्य परिषह के त्याग रूप नैर्ग्रन्थ्य अवस्था 4. मन का नियमन अर्थात् चित्त निरोध होना 5. परिषह जयी होना। ये 5 ध्यान के हेतु हैं। कारण के बिना कार्य की सि) नहीं होती है। अतः ध्यानी बनने से पूर्व उक्त 5 गुणों को जीवन में लाने की चेष्टा करें।

उक्त 12 प्रकार के तपों में प्रत्येक तप दोषों को निवृत्ति के लिये परम रसायन है। मिट्टी भी तप कर ही पूज्य बनती है। जब वह अग्नि की तपन को पार कर लेती है तब पक्के पात्र घड़े आदि का रूप धारण कर पाती है और आदर प्राप्त करती है। कहा भी है पहले कष्ट, फिर मिष्ट पदार्थ की महत्ता वेदना सहकर ही होती है।

जन्म जरा मरण रोग शोक आदि सभी प्रकार की वेदनाओं से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय सम्यक् तप है। जैसे बाम लगाने से सिर का दर्द निकल जाता है इसी प्रकार संसार की वेदना को मिटाने के लिए तप रूपी बाम का उपयोग करना ही होगा।

लोहे की छड़ जब टेढ़ी हो जाती है तो केवल तपाकर ही उसे सीधा बनाया जा सकता है अन्यथा सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं। उसी प्रकार विषय और कषायों के टेढ़ेपन को निवृत्ति के लिए आत्मा को तपाना ही एक मात्र अव्यर्थ साधन है।

तप का विलोम “पत” होता है, जो यह बता रहा है कि मनुष्य भव पाकर भी यह तप नहीं किया तो पतन अवश्यभावी है। किसी कवि ने कहा है-

मानव जीवन अमूल्य और सीमित है, इसका एक क्षण भी संयम तप आदि के बिना नहीं जाना चाहिए। सादा जीवन उच्च विचार का होना ही तपस्वी का श्रेष्ठ चिन्ह है।

अभी पंचमकाल है। इस समय, साधु तपश्चरण के समस्त गुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकते ऐसी भगवान की वाणी है। भगवान षभदेव ने भरतचक्रवर्ती से स्वप्नों का ग्ल बताते हुए कहा-

करीन्द्र भारनिर्भुग्न पृष्ठस्याश्वस्य वीक्षणात्।
कृत्स्नान् तपोगुणान् वोढुं नालं दुष्षम-साधवः॥

“बड़े हाथी के उठाने योग्य बोझ से जिसकी पीठ झुक गई ऐसे घोड़े के देखने से मालूम होता है कि पंचमकाल में साधु तपश्चरण के समस्त गुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।” पर हतोत्साहित होने की जरूरत नहीं है क्योंकि वर्तमान में हीन संहनन वाले का स्वल्प तप भी महान् ग्ल को देने वाला है। कहा भी है-

वारिस सहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण।
तं संपहि वरिसेण हु णिज्जरयइ हीण संहणणे॥भा.स.॥

अर्थ-उत्तम संहनन वाला एक हजार वर्ष तक कठोर तप करके जितना कर्म निर्जरा करता है उतनी, हीन संहनन वाला एक वर्ष में, निर्जरा कर सकता है। अतः पुरुषार्थ को छोड़कर बैठने की भूल ज्ञानी जन न करें। यथाशक्ति तप में लगे रहें। पर तप निर्वाचित अवश्य होना चाहिए। वांछा युक्त तप भुक्ति के लिए हो सकता है,

मुक्ति के लिए नहीं।

‘तपसा निर्जरा च’ इस सूत्रनुसार तप का ग्ल संवर और निर्जरा है। यदि तप करने से आकुलता हो और संवर निर्जरा न हो तो वह तप भी तप नहीं है। साधन वही है जो साध्य को दिशा दे। तप वही है जो जीव को अन्तरात्मा से परमात्मा बना दे। इस प्रकार के सम्यक् तप का आचरण करना ही उत्तम तप धर्म है।

मुनिराज इन तपों का पूर्णतया पालन करते हैं। श्रावक अपनी शक्ति अनुसार तपों का पालन करते हैं।

करोति सत्तपो यस्तु स्वर्ग राज्यं हि प्राप्य सः।

मुक्तिरमा लभते श्रेष्ठी नान्दनो नागदत्त वत्॥

जो मनुष्य समीचीन तप को करते हैं वह नाग दत्त सेठ की भाँति स्वर्ग श्री का भोग प्राप्त करते हुए मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

तप की महिमा का एक रोचक कथानक आता है। नागदत्त नाम का एक सेठ का एक पुत्र था। वह गृहस्थी के कार्यों से विरक्त रहता था। वह पुत्र बड़ा हुआ और योग्य गुरुदेव का सान्निध्य पाकर मुनि हो गया। एक बार जंगल में मुनिराज कायोत्सर्ग तप में लीन थे। वहीं डाकुओं का अबा था डाकुओं ने सोचा हमारा भेद बता देगा अतः वह उन्हें त्रस देने लगे किन्तु मुनिराज की महिमा जानने वाले सरदार ने रोक दिया और कहा ये संसार की माया से दूर रहते हैं इन्हें किसी से ममत्व नहीं है। मुनिराज कुछ समय तक ध्यान में लीन बैठे रहे तभी उनकी माँ और बहिन उसी जंगल से निकली और उन्होंने साधु से पूछा कि हे साधु! आप तो जंगल में रहते हो और जानते होंगे कि यहाँ जंगली हिंसक जानवर और चोर आदि तो नहीं रहते। मुनिराज ने कुछ नहीं कहा। उन्हें मालूम था कि आगे

डाकू रहते हैं। फिर भी कोई राग द्वेष नहीं किया। आगे जाकर उन डाकुओं ने माँ और बहिन को पकड़ लिया। सरदार ने कहा मैंने कहा था कि जैन दिगम्बर साधु किसी से राग द्वेष नहीं रखते। जैसे ही माँ ने सुना वह क्रोधित हुई और बोली हे सरदार! तुम यह तलवार मुझे दो मैं उस कुलकलंकी ऋमुनिवरऋ को खत्म कर दूँ। सरदार को मालूम हुआ कि ये मुनिराज की माँ व बहिन है तो सरदार ने गद्गद्वाणी से हे माता! आप धन्य है आपकी कुक्षि धन्य है आप जगत् माता हैं जो आपने ऐसे वैरागी आत्मा को जन्म दिया ऐसा कहकर उनका यथायोग्य सम्मान किया। आदर सहित उनको अपने अंगरक्षकों के द्वारा नगर तक भेज करके डाकू स्वयं साथियों सहित मुनि बन गया। ये है तप की महान् महिमा।

जो सुख चाहो भ्रात तुम आतम अनुभव धार।

ज्ञान ध्यान तप क्यारियाँ नूलेँ नूलेँ आधार।

इस मनहूस जीवन में लगे रहत है काम।

कुछ समय का तप करो पहुँचो मुक्ति धाम॥

करते खाते दिन गयो, सोय बिताई रात।

मरना सबका निश्चित है मरने के दिन सात॥

यदि सात दिनों को जान नहीं पाया तो कुछ नहीं जाना। इंसान का जीवन सात दिन का है सोमवार को जन्म, मंगलवार का पढ़ने गया बुधवार को डिग्री प्राप्त की गुरुवार को सर्विस या निजनिश किया शुक्रवार को शादी शनिवार को बुढ़ापा आया और रविवार को मरण होकर जीवन का अन्त हो गया। जब तक इच्छाओं का निरोध नहीं होगा। जब तक संसार में भटकना पड़ेगा। किसी कवि ने कहा है-

इच्छा दुःख की मूल है, अवगुण की है खान।

इच्छा तज कर तप करो, पाओ केवलज्ञान॥

साधक हमेशा अपने जीवन में भावना भाते हैं कि जब तक जीवन रहे तब तक तप सहित जीवन रहे और जीवन का अन्त भी तप सहित हो। कहा भी है

यही जीने का मकसद है, यही है आरजू मेरी।
गर दम निकले तो, तप करते ही दम निकले॥

सुतप रूप अग्नि से भैया, निज आतम को जो जा।
बार-बार सतगुरु समझाते, कर्म मैल को धो जा॥

सारे उपदेश का सारांश यह है कि चाहे साधु हो या श्रावक सभी को कुछ न कुछ इच्छाओं का निरोध अवश्य करना चाहिए। यद्यपि मन घोड़ा, बन्दर और गिरगिट से भी चंचल होता है तथापि इसे सम्हालना आवश्यक है। अपने मन को सारा कार्य कभी नहीं सौंपना, उन पर अपनी लगाम द्धनियन्त्राक्र अवश्य रखना।

ज्यों पत्थर में स्वर्ण है, ज्यों चकमक में आग।
त्यों तन में चेतन बसे, जाग सके तो जाग॥

तपन को महसूस जो नहीं करता, शीत का उपचार कैसे करेगा।
नहीं जाना है मर्ज को जिसने, वह रोग का उपचार कैसे करेगा॥
बाधाओं को दूर करने के पूर्व, उसका तरीका जानने की जरूरत है।
सुख शांति को जिसने नहीं जाना, वह तपाचार कैसे करेगा॥

तप के भेद कहे बाह्य और अभ्यन्तर
अनशन ऊनोदर अरु व्रत को संख्यान है
रस को परित्याग और शैया विविक्त होय
काय क्लेश बाह्य तप का ही व्याख्यान है
प्राश्यचित्त लेय विनय करते हैं वैयावृत्य
स्वाध्याय कायोत्सर्ग अन्तरंग ध्यान है

इच्छा निरोधकर आतम को बोधकर
उत्तम तप पाय विशद करते कल्याण है॥

अगर सत्य को अपने जीवन में पा जाओगे।
आप स्वयं से स्वयं में समा जाओगे।
अपने अर्न्तमन से तप को धारण कर लिया तो।
यह जन्म क्या अजर अमर हो जाओगे॥
जिन्दगी एक गीत है मधुर ध्वनि में गाते रहिए।
स्वजन शुभ संगीत हैं शुभ हो बजाते रहिए।
जिन्दगी पतन के लिए तपन के लिए है प्यारे भाई।
आत्मा को तप से तपाकर मुस्कराते रहिए॥
जिन्दगी अपनों के बीच बिखरती चली गई।
जितनी संवारी उतनी ही संवरती चली गई॥

सिहरन और तड़पन आ जाती आपके अन्दर में।
तो शूलों के बीच तपकर भी निखरती चली गई॥
तूल बनकर महकते हैं तथी पाते हैं महलिल को।
करें पुरुषार्थ जो मन से जीत लेते हैं मुश्किल को॥
तपाते जो तन बदन को जो विशद चारित्र धारते हैं।
संत कर्मों से लड़ते हैं तभी पाते हैं मंजिल को॥

ॐ ऋं श्री उत्तम तप धर्मान्नाय नमः

उत्तम त्याग धर्म

निज शक्ति की खोज है	त्याग
पर वस्तु का विसर्जन है	त्याग
विभाव का समापन है	त्याग
स्वभाव की खोज है	त्याग
स्वराज्य का मिलन है	त्याग
शाश्वत की ओर गमन है	त्याग
अतिक्रमण का छोड़ना है	त्याग
मित्रता का आह्वान है	त्याग

स्व द्रव्य की प्राप्ति है	त्याग
कषायों की निवृत्ति है	त्याग
निज खजाने की खोज है	त्याग
भविष्य का निर्माण है	त्याग
जागरूकता का नाम है	त्याग
मूलधन है	त्याग
कषायों को भस्म करने हेतु आग है	त्याग
खुशी की झलक है	त्याग
स्वयं की विजय है	त्याग
प्रकृति का बीज है	त्याग
हल्कापन है	त्याग
छुटकारा है	त्याग
आध्यात्मिक परिवर्तन है	त्याग
आदर्श जीवन है	त्याग
आत्म संशोधन है	त्याग
आत्म विशुद्धि है	त्याग
दीपक की लौ है	त्याग
अपूर्ण औषधि है	त्याग

“निज शुभात्म परिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तर परिग्रह निवृत्ति त्यागः” निज शुभात्म के ग्रहण पूर्वकबाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से निवृत्त त्याग है।

णिर्व्वेग तियं भावइ मोहं चइऊण सव्व दव्वेसु।

जो तस्स हवे च्यागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं।त.वि.सा.॥

जिनेन्द्र भगवान ने कहा जो जीव सम्पूर्ण द्रव्य से मोह को छोड़कर संसार देह और भोगों से उदासीनता रूप परिणाम रखता

है उसके त्याग धर्म

त्याग मनुष्य जीवन की सार्थकता है। त्याग से ही अपूर्व परिवर्तन आता है। त्याग ण से मुक्त कराता है। आज का किया त्याग अगले भव का खजाना है। त्याग आत्मा का स्वभाव है। त्याग मौलिक कर्तव्य है, कीर्ति का प्रतीक है। त्याग जीवन का पालक है। जीवन की क्रान्ति त्याग है। त्याग से जीवन हल्का होता है। त्याग से रोग उत्पत्ति रूकती है।

त्याग-त्याग कर त्याग दूँ, सारे जग से नेह।

त्याग-त्याग कर त्याग दूँ, अपनी भी यह देह॥

त्याग-त्याग कर त्याग दूँ, यह सारा संसार।

त्याग-त्याग कर पा सकूँ, मुक्ति वधू का द्वार॥

धर्म स्नेही बन्धुवर! दस सीढ़ियों में आज आठवां दिन त्याग का है इससे पूर्व 5 दिन तक प्रवृत्ति चलती है। उसके बाद निवृत्ति अर्थात् संयम की बात आती है। संयम 5 इन्द्रिय और मन का रोकना एवं 5 स्थावर, 1 त्रस। षट्काय के जीव की रक्षा करना संयम है तथा इच्छाओं का निरोध तप है। मुनिराजों ने संयम के लिए सब कुछ त्याग दिया यहाँ तक कि तन के ऊपर का धागा भी त्याग दिया। अब त्याग करने के लिए क्या बचा है? अर्थात् कुछ भी नहीं बचा है। आज त्याग की वास्तविक बात प्रकट करते हैं। त्याग खोटी चीज का किया जाता है और दान अच्छी चीज का दिया जाता है। यही कहा जाता है कि क्रोध छोड़ो, मान छोड़ो, माया छोड़ो, लोभ छोड़ो(यह कोई नहीं कहता कि ज्ञान छोड़ो। जो दुःखस्वरूप हैं, दुःखकर हैं, आत्मा का अहित करने वाले हैं-वे मोह-राग-द्वेष रूप आस्रव भाव ही हेय हैं, त्यागने योग्य हैं, इनका ही त्याग किया जाता है। इनके साथ ही इनके आश्रयभूत अर्थात् जिनके लक्ष्य मोह-राग-द्वेष होते हैं-ऐसे पुत्रदि चेतन एवं धन-मकानादि अचेतन पदार्थों का भी त्याग होता है। पर मुख्य

बात मोह-राग-द्वेष के त्याग को ही है, क्योंकि मोह-राग-द्वेष के त्याग से इनका त्याग नियम से हो जाता है(किन्तु इनके त्याग देने पर भी यह गारन्टी नहीं कि मोह-राग-द्वेष छूट ही जावेंगे।

बहुत से लोग तो त्याग और दान को पर्यायवाची ही समझते हैं। किन्तु उनका मानना एकदम गलत है। ये दोनों शब्द पर्यायवाची तो हैं ही नहीं, अपितु कुछ अंशों में इनका भाव परस्पर एक दूसरे से विरु (पाया जाता है।

यदि ये दोनों शब्द एकार्थवाची होते तो एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग आसानी से किया जा सकता था। किन्तु जब हम इस प्रकार का प्रयोग करके देखते हैं तो अर्थ एकदम बदल जाता है। जैसे दान चार प्रकार का कहा गया है-1. आहारदान 2. औषधिदान 3. ज्ञानदान 4. अभयदान

जब जरा उक्त चारों शब्दों में 'दान' के स्थान पर 'त्याग' का प्रयोग करके देखें तो सारी स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

क्या आहारदान और आहारत्याग एक ही चीज है? इसी प्रकार क्या औषधिदान और औषधित्याग को कहा जा सकता है?

नहीं, कदापि नहीं(क्योंकि आहार दान और औषधिदान में दूसरे पात्र-जीवों को भोजन और औषधि दी जाती है, जबकि आहारत्याग और औषधित्याग में आहार और औषधि का स्वयं सेवन करने का त्याग किया जाता है। आहारत्याग और औषधित्याग में किसी को कुछ देने का सवाल ही नहीं उठता। इसी प्रकार आहारदान और औषधिदान में आहार और औषधि को त्यागने का ब्रह्म नहीं खाने का भी प्रश्न नहीं उठता।

आहारदान दीजिए और स्वयं भी खूब खाइये, कोई रोक-टोक नहीं(पर आहार का त्याग किया तो फिर खाना-पीना

नहीं चलेगा।

आहार और औषधि के सम्बन्ध में कहीं कुछ अधिक अटपटा नहीं भी लगे, किन्तु जब 'ज्ञानदान' के स्थान पर ज्ञानत्याग शब्द का प्रयोग किया जाए तो बात एकदम अटपटी लगेगी। क्या ज्ञान का भी त्याग किया जाता है? क्या ज्ञान भी त्यागने योग्य है? क्या ज्ञान का भी त्याग किया जा सकता है?

इसी प्रकार की बात अभयदान और अभयत्याग के बारे में समझना चाहिए।

एक बात और भी समझ लीजिये। दान में कम से कम दो पार्टियाँ चाहिए और दोनों को जोड़ने वाला माल भी चाहिए। आहार देने वाला, आहार लेने वाला और आहार(औषधि देने वाला, औषधि लेने वाला और औषधि-इन तीनों के बिना आहारदान या औषधिदान संभव नहीं है। यदि लेने वाला नहीं तो देंगे किसे? यदि वस्तु न हो तो देंगे क्या? पर त्याग के लिए कुछ नहीं चाहिये। जो अपने पास नहीं है-त्याग उसका भी किया जा सकता है जैसे 'मैं शादी नहीं करूँगा' इसमें किस वस्तु का त्याग हुआ? शादी का। लेकिन शादी की ही कहाँ है? जब शादी की ही नहीं तो त्याग किसका? करने के भाव का त्याग।

इसी प्रकार सर्व परिग्रह का त्याग होता है, पर सर्व परपदार्थरूप परिग्रह है कहाँ हमारे पास? अतः उसके ग्रहण करने के भाव का ही त्याग होता है।

त्याग के लिए हम पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। उसमें हम जिसे त्यागें, उसे लेने वाला नहीं चाहिए, वस्तु भी नहीं चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दान एक पराधीन क्रिया है, जबकि त्याग पूर्णतः स्वाधीन। जो क्रिया दूसरों के बिना सम्पन्न न

हो सके, वह धर्म नहीं हो सकती। धर्म पर के संयोग का नाम नहीं, अपितु त्याग वियोग का है। कम से कम त्यागधर्म में तो पर के संयोग की अपेक्षा संभव नहीं है (त्याग शब्द ही वियोगवाची है। यद्यपि इसमें शु)परिणति सम्मिलित है, परन्तु पर का संयोग बिल्कुल नहीं।

कुछ वस्तुएँ हैं जिनका त्याग होता है, दान नहीं। कुछ ऐसी हैं जिनका दान भी होता है और त्याग भी। जैसे-राग-द्वेष, माँ-बाप, स्त्री-पुत्रदि को छोड़ा जा सकता है, उनका दान नहीं दिया जा सकता (ज्ञान और अभय का दान दिया जा सकता है, पर वे त्यागे नहीं जाते (तथा औषधि, आहार, रुपया-पैसा आदि का त्याग भी हो सकता है और दान भी दिया जा सकता है।

शास्त्रों में कहीं-कहीं त्याग और दान शब्दों का एक अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। इस कारण भी इन दोनों के एकार्थवाची होने के भ्रम नैलने में बहुत कुछ सहायता मिली है। शास्त्रों में जहाँ इस प्रकार के प्रयोग हैं वहाँ वे इस अर्थ में हैं-निश्चयदान अर्थात् त्याग और व्यवहारत्याग अर्थात् दान। जब वे दान कहते हैं तो उसका अर्थ सिर्फ दान होता है और जब निश्चयदान कहते हैं तो उसका अर्थ त्यागधर्म होता है। इसी प्रकार जब वे त्याग कहते हैं तो उसका अर्थ त्यागधर्म होता है और जब व्यवहारत्याग कहते हैं तो उसका अर्थ दान होता है।

इस प्रकार का प्रयोग दशलक्षण पूजन में भी हुआ है। उसमें कहा है-

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषधि शारु अभय आहारा।
निश्चय राग द्वेष निरवारे, ज्ञाता दोनों दान संभारे॥

यहाँ ऊपर की पंक्ति में जहाँ उत्तम त्यागधर्म को जगत् में सारभूत बताया गया है वहीं साथ में उसके चार भेद भी गिना दिये

जो कि वस्तुतः चार प्रकार के दान हैं और जिनकी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

अब प्रश्न उठता है कि ये चार दान क्या त्यागधर्म के भेद हैं? पर नीचे की पंक्ति पढ़ते ही सारी बात स्पष्ट हो जाती है। नीचे की पंक्ति में सफ-सफ लिखा है कि निश्चयत्याग तो राग-द्वेष का अभाव करना है। यद्यपि ऊपर की पंक्ति में व्यवहार शब्द का प्रयोग नहीं है, तथापि नीचे की पंक्ति में निश्चय का प्रयोग होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर जो बात है वह व्यवहार त्याग अर्थात् दान की है। आगे और भी स्पष्ट है कि 'ज्ञाता दोनों संभारे' अर्थात् ज्ञानी आत्मा निश्चय और व्यवहार दोनों को सम्भालता है। 'दोनों दान' शब्द सब कुछ स्पष्ट कर देता है।

त्यागाय श्रेयसे वित्त मवित्तः संचनोति य।
स्वशरीरं स पद्मेन, स्नास्यामीति विलम्पति॥

जो निर्धन मनुष्य है वह त्याग करने के उद्देश्य से अत्रिाक धन संग्रहीत करता है उसका त्याग। मैं स्नान करूँगा थोड़ा सा और कीचड़ लगा लूँ मानव। इस प्रकार का है इसी प्रकार से आज का प्रत्येक प्राणी विषय भोगों में लीन रहता है। उनसे छूटने के लिए सोचता है कि आज नहीं कल, कल नहीं परसो छोड़ देंगे किन्तु वह छूटता नहीं बल्कि डूबता है।

एक बार आङ्ग श्री विमलसागरजी महाराज की सभा में एक भक्त पहुँचा। वहाँ विधान की बोली का कार्यक्रम चल रहा था। उस भक्त ने बहुत बड़ी बोली ली। बोली के पश्चात् वह आशीर्वाद लेने गया। उसने आङ्ग श्री से कहा-महाराज ऐसा आशीर्वाद (इसमें) दो कि हम इसी प्रकार का दान देते रहें। महाराज आशीर्वाद के लिए हाथ उठा ही रहे थे इतने में उसने

कहा-हमेशा कमाई भी करते रहें तो उन्होंने अपना हाथ नीचे कर लिया। महाराज से उस भक्त ने पूछा- भगवन् आपने नीचे हाथ क्यों कर लिया? महाराज ने कहा-मेरा आशीर्वाद दान देने के लिए है न कि कमाई करने के लिए।

जहाँ संयम हो जाता है। सत्य के दर्शन हो जाते हैं, वहीं त्याग की भूमिका तैयार हो जाती है। सांसारिक वैभव का संग्रहकर्ता अपने को बहुत ऊँचा मानता है पर उनकी यह त्वारणा गलत है। ग़लत: त्यागी जीवन में गौरव व प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं। वे ही सबसे ऊपर रहते हैं, क्योंकि जिन्होंने सब कुछ त्याग कर दिया वह हल्के हो गये हैं, उनकी हम पूजा करते हैं, श्र) से नमन करते हैं। हमारे चौबीसों तीर्थंकर भगवान त्यागकर ही मोक्ष गये हैं। हमारे सामने हमारे गुरुजन विराजे हैं उन्होंने भी संसार, अपना घर-परिवार, मोह, राग आदि का त्याग किया है, तभी तो वह हमारे श्र) के पात्र बने है हम नमन् करते हैं, जय-जयकार करते हैं।

त्याग धाम्र को पाने के लिए आवश्यकता तो छोड़ने की है, लेकिन आज “छोड़ो नहीं जोड़ो का नारा चल रहा है।” जोड़ने ब्रह्मसंग्रहऋ की प्रवृत्ति दुःख को ही जन्म देने वाली होती है। आज के दिन हमें सब छोड़कर इतने हल्के हो जाना चाहिए की डूबने की नौबत न आये। तराजू के पलड़े पर थोड़ा सा भार होने पर झुक जाता है। उसी प्रकार आपका संग्रह ज्यादा हो गया तो नीचे ब्रह्मनर्कोऋ की ओर ले जाने वाला होता है। तराजू के पलड़े से जितना भार ब्रह्मत्याग द्वाराऋ कम करते जावेंगे, उतना ऊपर उठ जाता है। उसी प्रकार त्याग करने वाला ऊपर उठकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

जो चयदि मिठभोजं, उवयरणं रायदोससंजणयं।

वसदिय ममत्तहेदुं चाय, गुणों सो हवे तस्सा॥

संसार शरीर और भोगों से विरक्त व्यक्ति ही मुनि पद का अधिकारी होता है। अतः इनका त्याग तो वह मुनिव्रत धारण करते समय ही कर देता है(यहाँ तो मुनि को जिन वस्तुओं से काम पड़ता है, उनके त्याग का ही निर्देश किया है। मुनि को जीने के लिए भोजन करना पड़ता है, किन्तु वह कामोत्पादक सरस आहार ग्रहण नहीं करता है। धर्म-साधन में सहायक पिच्छी-कमण्डलु आदि भी ऐसे नहीं रखता जिनसे मन में राग उत्पन्न हो। वह ऐसी जगह नहीं बसता या ठहरता जिससे उसको ममत्व पैदा हो, इसी का नाम त्याग है। तत्त्वार्थ सूत्र की टीका में श्रावक द्वारा ‘संयमी मुनि के योग्य, ज्ञान, संयम, और शौच के उपकरण, पुस्तक, पिच्छी और कमण्डलु देने को त्याग कहा है।’

भारतीय वसुन्धरा पर भोगों को त्यागकर योगी बनने की कहानी जितनी सुन्दर है, उतनी ही महान् गौरव गाथा रण-बांकुरों वीर सपूतों के त्याग की कहानी भी है। एक राजा जिसका राज्य छिन गया है जो अब भिखारी के भेष में दर-दर की ठोकें खाते हुए अपने ही राज्य में एक गाँव में पहुँचा। गाँव का हाल देखकर राजा हैरान हुआ, चारों ओर भुखमरी, बीमारी, चेहरों पर हताशा, इससे भी अधिक हैरानी राजा की ये हुई कि एक भी जवान आदमी गाँव में नहीं दिखा, सभी बूढ़े आदमी और बेवा स्त्रियाँ ही नजर आयीं। राजा से न रहा गया और एक दादाजी से पूछ ही लिया कि क्या इस गाँव में एक भी जवान बालक नहीं है? इतना सुनते ही दादाजी बोले-तुम्हें नहीं मालूम मुसाफिर हमारे राज्य पर किसी बड़े राजा ने आक्रमण किया, चारों ओर देशभक्ति की लहर दौड़ गई और सभी वीर युवक रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। राजा ने फिर पूछा-क्या कोई भी नहीं बचा? वृ) कहने लगा-राहगीर! जन्मभूमि की प्रतिष्ठा में ही हम सबकी प्रतिष्ठा

छिपी है, जिसकी धूल में हमारा जन्म हुआ उसी में लेटकर हम बड़े हुए हैं, जिसने हमें पीने को पानी और खाने को अन्न के साथ-साथ सुन्दर मधुर नल दिये, उसकी सेवा और रक्षा से विमुख होना हमारी कृतघ्नता है। हे मुसारि! माता और मातृभूमि के ;ण से मानव, कभी उ;ण नहीं हो सकता, इसलिए जन्मभूमि की रक्षा के लिये हमारे देश के वीर सपूतों ने अपने प्राणों का भी त्याग कर दिया।

राजा की आँखों में आँसुओं का सागर तैरने लगा, वह विचार करने लगा-मुझे जिन्दा या मुर्दा उपस्थित करने वाले को मिथिला नरेश ने एक हजार स्वर्ण मुद्रायें देने की घोषणा कर रखी है, क्यों न इन असहायों को लेकर मैं स्वयं हाजिर हो जाऊँ और पुरस्कार इन ग्रामीणों को दिलवा दूँ, ताकि ये सुखी जीवन जी सकें। दूसरे दिन राजा, मिथलेश के सामने था, मिथलेश सकते में आ गया। जिसे मैं खोज रहा हूँ वह स्वयं मौत के मुँह में आ रहा है। मिथलेश अभी कौशल नरेश को देख ही रहा था कि कौशलेश बोला-हे मिथलेश! तुम्हें मेरा राज्य प्रिय था, वह तुम मुझसे छीन ही चुके हो, अब मेरी जान चाहते हो तो मैं हाजिर हूँ(लेकिन जो पुरस्कार आपने मेरे ऊपर घोषित किया है वह पुरस्कार मेरे इन देशवासियों को दिया जाये, ताकि ये अपना दुःख दूर कर सकें। इतना सुनते ही ग्रामीण बुजुर्ग तो रोने ही लगे। पर मिथलेश भी राज्य सिंहासन पर बैठा न रह सका, ऐसा अभूतपूर्व प्रजा प्रेम देखकर वह सिंहासन से नीचे उतरकर कौशल नरेश के गले लिपट गया और गद्-गद् कंठ से बोला-मुझे क्षमा करो राजन् और अपनी प्रजा का पालन करो, मैं तुम्हारा राज्य वापिस करता हूँ। जिस देश का राजा अपनी प्रजा के कल्याण में अपना कल्याण समझता है, जो प्रजा के दुःख दर्द में साथ रहता है वही सच्चा शासक है। राजा प्रजा प्रेम के कारण अपने प्राणों को भी त्यागने

पर उतारू हो गया। इसी प्रकार यदि हम विषय वासनाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं का त्यागकर सकें तो अपनी आत्मा की भगवत्ता प्रकट कर सकते हैं।

निस्पृह भावों को पाकर के, त्याग धर्म को तुम पाओ।
मूर्छा, माया त्यागकर भाई, कुछ तो हल्के हो जाओ॥
आत्मनियन्त्रण त्याग धर्म से, होता है कुछ, हल्का भार।
त्याग धर्म है, पाप मूर्छा, पाप से होता हैं संहार॥
त्याग बिना शांति नहीं होगी, तेरी आशा है निर्मूल।
वृक्ष त्याग करता जीवन में, तभी तो खिलते उत्तम नूल।
न्याय रीति से धन जो जोड़ा, उसमें ही सन्तुष्टि पाओ।
निस्पृह भावों को पाकर अब, त्याग धर्म को अपनाओ॥

किन्हीं विद्वान की उपरोक्त पंक्तियाँ त्याग की अनुपम महिमा व्यक्त करती हैं। कल्पना कीजिए कि यदि वृक्ष नल देना बन्द कर दे, नदी पानी देना बन्द कर दे, हवा, हवा देना बन्द कर दे, सूर्य प्रकाश देना बन्द कर दे, पृथ्वी अनाज देना बन्द कर दे, शरीर मल विसर्जन करना बन्द कर दे। बन्तुओं! जब उपरोक्त सभी अपनी क्रिया बन्द नहीं करते हैं तो हम संज्ञी पंच इन्द्रियधारी अपना त्याग धर्म कैसे भूल जाये? इससे सि) है कि त्याग परम आवश्यक है।

दान चार प्रकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुरी उनहार, नर भव लाहो लीजिए॥
उत्तम त्याग कहो जगसारा, औषध, शास्त्र, अभय, अहारा।
निहचै राग द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संवारे॥

जिनवाणी की उपरोक्त पंक्तियाँ दान की विशाल महिमा का वर्णन करती हैं। हम जैन श्रावकों को अपनी उत्तम कमाई में से हमेशा चार प्रकार के दान द्वाँषध, शास्त्र, आहार, अभयत्र

चार प्रकार के पात्रें ब्रह्ममुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक एवं श्रेष्ठ व्रती साधकोंऋ को दान देने में हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

त्याग न करना, अस्वस्थता ब्रह्मीमारीऋ को आमंत्रण है। एक बार थोड़ा सा त्याग आपके जीवन में नई क्रांति ला देगा। त्याग का जन्म दाता दान है।

दानी दान को देते भैया, पाने वाला पाया।
ईर्ष्यालु तो हाथ मलत हैं, देख-देख गुराया॥

त्यागी व्यक्ति में दान दी गई वस्तु के प्रति आकांक्षा, मोह, लालच नहीं होना चाहिए। अन्यथा वह त्याग ब्रह्मदानऋ त्याग नहीं रह जायेगा। त्यागी में अहंकार की भावना नहीं होनी चाहिए अन्यथा त्याग की गरिमा नष्ट हो जाती है। अन्तरंग से किया गया त्याग ही वास्तविक त्याग कहलाता है। त्याग ब्रह्मदानऋ छुपाकर किया जाता है। जैसे हमें स्नान करते समय छुपकर मैल त्यागते हैं, वैसे ही दान भी छुपकर करना चाहिए। त्याग के साथ भीतर की आकांक्षा लालसा का त्याग भी जरूरी है। दूसरे की देखा देखी में त्याग नहीं किया जाता है। ठीक इसी तरह मान प्रतिष्ठा के लिए किया गया त्याग व्यापार है। त्याग एक उपलब्धि है। जिसके बिना यह जीवन नहीं चल सकता।

धन सम्पदा के त्याग से ही जीवन हल्का एवं सुखी होता है। संग्रह वृत्ति आनन्द को नष्ट करती अर्थात् दुःखों को बढ़ाती है। आत्मा में सुख शांति और आनन्द त्याग से ही आयेगा। जैसे-जैसे परिग्रह, मोह, ममता, राग, संग्रह, आकुलता छोड़ेंगे वैसे-वैसे ही जीवन में हल्कापन, सुखशान्ति आती जायेगी। भौतिकवादी युग में यदि सुखशान्ति चाहते हैं तो त्याग की ओर कदम बढ़ाने में ही भला है।

हमें अपने और दूसरों के उपकार के लिए दान करना चाहिए। जिन्होंने भी नाम एवं मान अहंकार के लिए दान किया है, उनके लिए यह दोहा यथार्थ होता है-

“मान बढ़ाई कारणै जो धन खरचै जो मूढ़।
मरकर हाथी होत है, धरती लटके सूड़॥

एक कहानी आती है घसीटे लाल बहुत बड़े सेठ थे। जनता की दृष्टि में दानी मानी व्यक्ति भी थे। वे रोज सैकड़ों व्यक्तियों को भोजन पानी दिया करते थे। नगर में उनका ही गुणगान हुआ करता था। वही सेठ के सामने एक बुढ़िया भी रोज एक व्यक्ति को अपनी कमाई से भोजन करा देती। बुढ़िया की आस्था धर्म पर थी और सोचा करती थी जितना है उतना ही दान कर दो। लेकिन सेठ के पास आस्था नहीं थी। वह तो मान बढ़ाई के लिए दान करता था और कभी-कभी दान लेने वालों को झड़कता डांटता भी रहता था। एक दिन दोनों की मृत्यु हो गई। सेठ मरकर हाथी हुआ और बुढ़िया मरकर राजकुमारी। जब राजकुमारी बड़ी होकर हाथी पर बैठकर सैर को जाना चाहती थी तो जैसे ही हाथी के पास गई, हाथी ने उसे देखा और चिगधाड़ा। उन दोनों को अपने पूर्व जन्म की कथा स्मरण आ गई। राजकुमारी हाथी पर दया करके उसे अपनी देख-रेख में रखने लगी और समझाती थी कि मान के लिए दिये गये दान का परिणाम ही है कि तुम्हें हाथी बनना पड़ा। अतः हमें दान त्याग निःस्वार्थ भाव से करना चाहिए।

एक कंजूस सेठ का कथानक आता है कि सेठ गरीबलाल खच्चरमल अपने नगर के श्रेष्ठ व्यापारी और साथ ही कंजूसों में से एक थे। वे करोड़पति होते हुए भी कभी दाल रोटी, कभी सूखी रोटी खाते थे और तो कभी-कभी भूखे ही सो जाते थे। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी उनकी पत्नी पर इसका विपरीत प्रभाव

था। वह दानशील स्वभाव की थी। एक दिन पत्नी बोली मेरा जन्म दिवस है अतः इस बार एक ब्राह्मण को जिमा दो अर्थात् भोजन करा दो। सेठजी आनाकानी करते रहते। एक दिन पत्नी ने खटिया पकड़ ली और कराहते हुए बोली आप जब तक हाँ नहीं कहेंगे, तब तक जल-आहार भी नहीं लूंगी। सेठ जी ने किसी प्रकार से हाँ कर दी। सेठ इस गली से उस गली में लगे ढूँढ़ने पतले दुबले ब्राह्मण को जो कि कम खाता हो। एक चालाक ब्राह्मण सेठजी की योजना पहचानते हुए अपने दरवाजे पर बैठ गया। सेठजी ने अपने विचारनुसार जानकर ब्राह्मण से कहा आपको हमारे यहाँ भोजन को चलना है। पण्डित जी ने बहाना बनाते हुए कहा कैसी बात करते हो आधी रोटी भी अन्दर नहीं जाती है पेट में दर्द रहता है, तीन दिन से कुछ भी अन्दर नहीं जाता। सेठजी को पण्डित जी की बात जंच गई, सेठजी हाथ धोकर पीछे ही पड़ गये कि आपको तो हमारा निमन्त्रण स्वीकार करना ही होगा। चालाक ब्राह्मण बोला तो आपकी इतनी अधिक श्रमा है तो हम आपकी श्रमा नहीं तोड़ेंगे, चलो थोड़ा बहुत पानी ही पी लेंगे। सेठजी ब्राह्मण को घर ले गये। पत्नी से बोले ब्राह्मण को भोजन कराओ और स्वयं आवश्यक कार्य से दुकान पर चला गया। ब्राह्मण ने भोजन करना शुरू किया, जितना कच्चा पक्का भोजन पकवान बना था सब हजम कर गया। बाद में सेठानी जी से बोला सेठ जी ने कहा था 2 मन चावल, 3 मन गेहूँ, 2 मन दाल, 20 किलो घी मेरे घर भेज दिया जाये। सेठानी जी को आश्चर्य हुआ लेकिन सोचा हो सकता सेठजी की बुद्धि पलट गई हो और ब्राह्मण झूठ थोड़े ही बोलेंगे। पत्नी ने सारा का सारा माँगा सामान ब्राह्मण के घर भिजवा दिया। कुछ समय बाद सेठजी भोजन करने हेतु घर पर आये। स्थिति की जानकारी दी और पत्नी पर बड़बड़ाते हुए कहा कि पहले मैं उस ढोंगी पण्डित को देखता हूँ, बाद में भोजन करूँगा।

सेठजी चल पड़े, ब्राह्मण के घर की ओर। पण्डित तो चालाक था ही अपने घर आकर के सारा का सारा ड्रामा ऋयोजनायुक्त तैयार किया और पत्नी से बोला अच्छी तरह तैयार हो जाओ पण्डिताइन भी बहुत चालाक थी। पत्नी बाहर के दरवाजे पर बैठ गई, जैसे ही सेठ जी सड़क पर दिखे तो वह जोर-जोर से सीना पीट कर रोने का नाटक करते हुए कहने लगी न जाने आज मेरा पति किस दुष्ट के, किस हत्यारे पापी के, यहाँ भोजन करने गया था और मर गया? क्या मालूम भोजन में क्या था? मैं अभी राजदरबार जा रही हूँ। सभी बातें अपनी बीती बता दूंगी। जिसके यहाँ पर भोजन किया उसका नाम बता दूंगी। ब्राह्मण हत्या का नल क्या होता? ये सब बातें सेठ जी ने सुन ली। सारी बातें सुनते ही सेठ जी की भूख, क्रोधा, कंजूसपन सभी गायब हो गये और सोचने लगा कैसी परेशानी आ गई। पकड़ा गया तो सारा धन जायेगा, सजा अलग मिलेगी। हो सकता है गँसी की सजा भी हो जाये। अतः जैसे भी हो निपट लेना चाहिए। वह पण्डिताइन के पास गया और बोला माता किसी ने जानबूझकर थोड़ी तुम्हारे पति को मारा होगा जो होना था सो हो गया अब पछताने से होता क्या है, संतोष धारण करो। पण्डित जी मेरे यहाँ पर भोजन करने गये थे किन्तु मौत के लिए मेरा दोष नहीं है। आप ये सब रुपये ले लो और बात को खत्म करो। पण्डिताइन बोली तुम जले पर नमक छिड़क रहे हो। तब सेठजी ने 5000 रुपये दे दिये और किसी तरह पण्डिताइन को पटा करके, सिर पीटते हुए अपने घर आया। पण्डित जी पण्डिताइन बहुत खुश हुये और सुखीपूर्वक रहने लगे। कंजूसी का परिणाम बहुत खराब होता है। अतः दान करना आवश्यक है। त्याग के बिना जीवन कुछ भी नहीं है। अतः त्याग मय जीवन जीना सीखो।

कर्म भार को छोड़कर रहिमन उतरो पार।

जिनके सिर पर भार है, वे डूबे मझधार॥

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथं.....।

त्यागपूर्वक भोग करो, उसमें गृता मत रखो। शरीर को जितनी जरूरत हो उतना ही ग्रहण करो।

समयसार में कहा गया है कि जिस प्रकार कड़वी गोली खानेवाला व्यक्ति सोचता है कि कड़वी गोली कब छूटेगी? उसी प्रकार-यह गृहस्थी कब छूटेगी यह भावना है जिसके मन में, सतत वैराग्य भावना है जिसके मन में उसका घर तपोवन है, वह कपड़े से ढका साधु है, तपस्वी है। यह असंभव नहीं है।

एक महिला थी उसके कोई बच्चा नहीं था। वह बहुत चिन्तित रहती थी-हमारे घर में कोई दीपक जलानेवाला नहीं है, कोई कुलदीपक नहीं है! बारह वर्ष बाद उसके एक बेटा हुआ। वह उसे खूब लाड़-प्यार से रखती, बहुत सार-संभाल करती उसकी। रात को भी हर एक घण्टे बाद उठकर उसे देखती-संभालती। छः महीने बाद उस बच्चे की मृत्यु हो गई। वह अब भी रात में बार-बार उठती बच्चे को संभालने के लिए, फिर देखती बच्चा तो है ही नहीं, फिर सो जाती। छः महीने उठते रहने से उसकी रात में उठने की आदत बन गई।

इसी प्रकार एक बार अध्यात्म की आदत बन/पड़ जाये तो वे विरक्त भाव हमेशा आपको जागृत रखेंगे, गृहस्थी में रहते हुए भी कर्मबंधा नहीं होने देंगे।

चार भेद दान के वीतराग देव कहे
आहार औषधि अरु अभय ज्ञान दान है
उत्कृष्ट माध्यम जघन्य दूपात्र है
नव कोटि भक्ति युक्त करना सम्मान है

श्रावक को कर्तव्य भाई मुख्यतः दान कहा संत त्याग करते हैं मोह लोभ मान है त्याग धर्म वीतराग भवों से होत है विशद मोह छोड़ना ही त्याग की पहचान है॥

दिया जल हमको बादल ने तो ऊँचा हो गया बादल।
रहा नीचा ही सागर है अदाता को पशेमानी॥
कोई धन देकरके मरता है कोई मरकर के देता है।
जरा से नर्क से बन जाते हैं ज्ञानी से अज्ञानी॥
त्याग की बात तो हर कोई किया करते हैं।
सत्य का नारा तो हर कोई दिया करते हैं॥
उतारे कथनी को करनी बनाकर अपने जीवन में।
ऐसा महावीर तो कोई-कोई हुआ करता है॥
श्रेष्ठ कार्य करने में जो असमर्थ होता है।
वही करता है द्वादशत्याग त्याग करना व्यर्थ होता है॥

अरे! त्याग मय जो इंसान हो जाता है प्यारे भाई
स्वर्ग की बात तो क्या मोक्ष जाने में समर्थ होता है।

ॐ ऋषीं श्री उत्तम त्याग धर्मान्नाय नमः

उत्तम आकिञ्चन्य धर्म

निजात्म दर्पण में झलक है।	आकिञ्चन्य
कषायों का शमन है।	आकिञ्चन्य
आध्यात्म का शिखर है।	आकिञ्चन्य
ध्यान की चोटी है।	आकिञ्चन्य
सम्पूर्ण प्रश्नों का उत्तर है।	आकिञ्चन्य
चिन्तन का अन्त है।	आकिञ्चन्य
साधना का प्रकाश है।	आकिञ्चन्य

एकत्व का नाम है।	आकिंचन्य
प्राकृतिक दशा है।	आकिंचन्य
शुभोपयोग का चरम विकास है।	आकिंचन्य
अन्तर की लगन का ग्ल है।	आकिंचन्य
अन्तर दृष्टि की महानता है।	आकिंचन्य
चेतना की तन्हाई है।	आकिंचन्य
स्वयं की खोज है।	आकिंचन्य
धर्म की श्रेष्ठता है।	आकिंचन्य
आध्यात्म की सुगन्ध है।	आकिंचन्य
ऊँचाई पर उठने का मार्ग है।	आकिंचन्य
अपूर्व शान्ति का कोष है।	आकिंचन्य
इन्द्रियों के निग्रह का नाम है।	आकिंचन्य
प्रत्यक्ष का स्तम्भ है।	आकिंचन्य
छद्मस्थ की अन्तिम दशा है।	आकिंचन्य

न किंचन इति अकिंचन ततस्य भावः आकिंचन्यः। जहाँ पर किंचित् मात्र भी अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह न हो उसे कहते हैं आकिंचन त्वार्म। जिस प्रकार विशाल समुद्र में रत्न ढूँढ़ पाना कठिन है, उसी प्रकार अकिंचन का प्राप्त कर पाना कठिन है। जिस प्रकार आसमान से तारे तोड़ पाना मुश्किल है उसी प्रकार मुश्किल है आकिंचन्य को पा सकना।

तिविहेण च जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संग।
लोयववहार विरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्सा।ता.वि.सा. 39॥

जो लोक [REDACTED] अचेतन और मिश्र परिग्रह को मन-वचन-काय से सबंध छोड़ देता है, उस मुनि के निर्ग्रन्थता अर्थात् आकिंचन धर्म होता है।

मुनि दान, सम्मान, पूजा, प्रतिष्ठा, विवाह आदि लौकिक कर्मों से विरक्त होते हैं। अतः पुत्र, स्त्री, मित्र, बन्धु-बान्धव आदि सचेतन परिग्रहों को तो पहले ही छोड़ देते हैं। मुनि अवस्था में भी शिष्य संघ आदि सचेतन परिग्रह से और पिच्छी-कमण्डलु आदि अचेतन परिग्रह से भी ममत्व नहीं करते हैं, इसी का नाम आकिंचन है। मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकार के भावों को आकिंचन कहते हैं। यह मेरा है इस प्रकार के संस्कार को दूर करने के लिए शरीर वगैरह से भी ममत्व नहीं रखना आकिंचन धर्म है। शरीर वगैरह से भी निर्ममत्व होने से मोक्ष पद की प्राप्ति होती है, किन्तु जो मुनि शरीर का पोषण करते हैं, उनका तपस्या में आदर भाव नहीं रहता, ऐसा मुनि सदा मोह के कीचड़ में नँसा रहता है।

आकिंचन्य धर्म हमें खाली होने, रिक्त होने का उपदेश देता है। जो जितना परिग्रह राग भोग संसार आदि से खाली दूरिक्त हो जायेगा वह उतना ही पूर्ण होता जायेगा। यह सभी को तो संभव नहीं। बिना परिग्रह के गृहस्थ जीवन में रहना संभव नहीं। फिर भी प्रत्येक गृहस्थ को परिग्रह का नियम लेकर ही रखना चाहिए। किसी भी चीज का नियम ले लेना चाहिए कि इससे अधिक नहीं रखेंगे। जिनका नियम नहीं होता उसको वास्तविक पुण्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। नियम में बन्धने का ग्ल अवश्य प्राप्त होता है। इसलिए हमेशा नियम में बन्धकर रहना चाहिए।

“बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषाः”

परिग्रही व्यक्ति कभी भी मोक्ष नहीं जा सकता है। बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखने से नरक गति की प्राप्ति होती है। किसी कवि ने कहा है-

माया मरी न मन मरा, मर मर गया शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गये दास कबीर॥

मैं एवं मेरा का सम्बन्ध दुःख लाता है। यदि मेरापन हट जाये तो मैं का स्थान ही नहीं रहेगा। आप कहते हैं मेरा मकान, मेरी दुकान मेरा सामान, मेरी सम्पत्ति। यदि सब छीन लिया जाये तो आप किसे अपना कहेंगे। तुरन्त ही आपका मैं भी छूट जायेगा। अतः मेरे से ही मैं पैदा होता है। मेरा को छोड़ते जायेंगे तो मैं स्वयं छूट जायेगा। अकिंचन बनने का सबसे सरल तरीका है, “मेरा हटा दो”

वीतरागी हुये बिना अकिंचन का अनुभव नहीं हो सकता है। इसीलिए धर्म ने हमें पहले क्रोध से मुक्त कराया। मृदुता, सरलता, पवित्रता आई, सत्य से परिचय कराया संयम दिलाया, तप कराया सांसारिकता मैं मेरेपन का त्याग कराया तब जाकर जीव अकिंचन द्वाअकेलाऋ होता है। अकिंचन अवस्था सूखे पेड़ के तना समान होती है। जिसने अपने सब कुछ छोड़ दिया है।

जो सुख सारे संसार के स्वामी बनने पर प्राप्त नहीं होता, वह सुख स्वयं के मालिक बनकर प्राप्त होता है। हमारे तीर्थंकर भगवान ने मोक्ष सुख सभी कुछ छोड़कर वीतरागता में ही पाया है। वह सुख किसी से माँगने पर नहीं मिलता अपितु अकिंचन बनोगे तभी मिलेगा। कहा भी है-

यत् सुखं न देव राजस्य, न सुखं चक्रवर्तिनः।
तत् सुखं वीतरागस्य, मुनेरेकान्त वासिनः॥

जिस प्रकार मछली का जन्म पानी में होता है उसी प्रकार इस जीव का जन्म मोह रूपी विशाल सागर में ही होता है और वही उसका संसार है उसी को सब कुछ मान लेता है। अकिंचन को पाने के लिए मोह के संसार से बाहर निकलना होगा। भगवान महावीर घर छोड़कर बाहर निकले तभी वह अकिंचन बनने। भगवान महावीर इतने अकिंचन थे कि जब उन्होंने राजपाठ वैभव को छोड़कर मुनिव्रत धारण किया और एक वृक्ष के नीचे तप कर रहे थे। एक किसान आया, उसने कहा मेरे बैल देखना मैं भोजन करने जा रहा हूँ और चला गया। कुछ समय बाद वह आया वहाँ बैल न पाकर दूढ़ने चला गया। वह बैलों को दूढ़ न सका तो वहीं भगवान महावीर जी के पास आया तो उसने बैलों को भगवान महावीर की तरु मुँह किये बैठा देखा। वह क्रोधित होकर सोचने लगा वे साधु मेरे बैल ठगना चाहता है। उसने पीटने के लिए डंडा उठाया और मारने के लिए हाथ ऊपर किया इतने में एक व्यक्ति आया और बोला ये तो महान् साधु है, किसी से राग द्वेष नहीं करते यह तो वीतरागी जैन साधु है, धन्य है इनका त्याग। चलो क्षमा माँगो। किसी कवि ने ऐसा कहा-

आदि का पता नहीं अन्त पर भरोसा है मुझे।
स्वभाव से बिछड़ा हूँ, फिर भी भरोसा है मुझे॥
जगत् में खोजता रहा हूँ, आज तक पाया नहीं।
खुद में ही खुद हूँ मैं, ये भरोसा है मुझे॥

निर्ग्रन्थता अर्थात् आकिंचन्य धर्म के लिए अभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के परिग्रह का अभाव आवश्यक है। यही निश्चय व्यवहार की संधि भी है।

“परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करें मुनिराज जी।”
आभ्यन्तर परिग्रह 14 प्रकार के होते हैं-

1. मिथ्यात्व 2. क्रोध 3. मान 4. माया 5. लोभ 6. हास्य 7. रति 8. अरति 9. शोक 10. भय 11. जुगुप्सा 12. स्त्री वेद 13. पुरुष वेद 14. नपुंसक वेद।

बाह्य परिग्रह 10 प्रकार के होते हैं-

1. क्षेत्र 2. मकान 3. चाँदी 4. सोना 5. धन 6. तान्य 7. दासी 8. दास 9. वरु 10. बर्तन।

इस प्रकार परिग्रह कुल 24 प्रकार के माने गये हैं।

उक्त चौबीस प्रकार के परिग्रह के त्यागी मुनिराज उत्तम आकिन्चन्य धर्म के धारी होते हैं। किन्तु प्रश्न होता है कि परिग्रह की परिभाषा क्या है? तत्त्वार्थ सूत्र में “मूर्च्छा परिग्रहः” मूर्च्छा भाव-राग भाव को परिग्रह कहा गया है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थ सिद्धि में लिखते हैं-

“ममेदं बुद्धिलक्षणः परिग्रहः” यह वस्तु मेरी है-इस प्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है।

दुःख का मूल ममता है और सुख का मूल समता। समता भाव को प्राप्त करने के लिए परिग्रह का त्याग करना आवश्यक है। परिग्रह के प्रति आदर भाव अनर्थ का मूल है। भाव शुद्धि के लिए बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है पर आभ्यन्तर शुद्धि के बिना बाह्य त्याग निष्फल है। संसार में समस्त संकटों का मूल अहंकार ममकार है। इस ममकार रूप मूर्च्छा भाव से बचने के लिए अथवा आकिन्चन्य धर्म की प्राप्ति के लिए कर्तृत्व बुद्धि, पर्याय बुद्धि और सम्बन्ध बुद्धि इन तीनों का परित्याग प्रथमतः आवश्यक है।

कर्तृत्व बुद्धि क्या है?-पर द्रव्य, पर पदार्थ का कर्ता अपने को मानना कर्तृत्व बुद्धि है। जैसे-पुत्र का पालन पोषण मैंने किया

है अतः मैं इसका कर्ता हूँ, मैंने इसको शिक्षा दीक्षा दी है अतः अमुक शिष्य को जन्म देने वाला मैं हूँ इत्यादि परिणामों को कर्तृत्व बुद्धि कहते हैं।

पर्याय बुद्धि क्या है? समाधान-मैं धनवान हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं बलिष्ठ हूँ इत्यादि रूप पर्याय में आत्म बुद्धि का होना पर्याय बुद्धि है, ज्ञानी हूँ, कुलवान हूँ।

सम्बन्ध बुद्धि क्या है?-यह मेरा घर है, यह मन्दिर मेरा है, यह पुत्र मेरा है इत्यादि पर पदार्थों में आत्म बुद्धि का होना सम्बन्ध बुद्धि है अर्थात् जो प्रत्यक्ष में भेद रूप है, पृथक् हैं, उनको आत्मा से अभिन्न मानना अथवा द्रव्य कर्म, नो कर्म भावकर्म जो एक क्षेत्रवगाह रूप से आत्मा के साथ स्थित हैं उनको अपना मानना ही सम्बन्ध बुद्धि है।

इन तीनों का परिहार करने के बाद ही आकिन्चन्य की ज्योति का उद्घाटन होता है। जिस प्रकार सघन बादल सूर्य के तेज को ढक देता है उसी प्रकार ये तीनों प्रकार की बुद्धियाँ आकिन्चन्य रूप आत्म ज्योति को प्रच्छादित करती हैं। सत्य ज्ञान से वंचित कर देती है।

जो तत्त्व ज्ञानी है, वह आत्म गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में अनुराग नहीं करता है अतः उसके शोक, दुःख क्लेश आदि परिणाम कभी नहीं होते हैं और वही निर्मल आकिन्चन्य धर्म का धारी है।

हमारे जीवन में स्थाई सुख की अथवा चिरबसन्त की स्थापना करने वाला आकिन्चन्य धर्म ही है। क्यों? समाधान-देखिये, बसन्त ऋतु जिसे हम सुखद कहते हैं उसका कारण पतझड़ है क्योंकि पतझड़ के बाद ही बसन्त ऋतु आती है। इसी प्रकार यदि हम अन्तर्जगत में चिर बसन्त की स्थापना चाहते हैं तो पतझड़ को

न भूलें। बन्धुओं! सूखे पत्ते के समान जो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि हैं उनका पतझड़ होने के बाद ही बसन्त के समान आङ्गनदकारी उस आकिन्चन्य धर्म की प्राप्ति हो सकती है। आत्म विकास की चरम सीमा आकिन्चन्य है क्योंकि आत्म विकास में बाधक जो मोह है, उसका आकिन्चन्य में अभाव है।

मोह का सर्वथा अभाव पूर्ण परिग्रह त्याग का बोधक है। परिग्रह पिशाच है, दुःख का बीज है। आत्मानुशासन में गुणभद्राचार्य लिखते हैं-

अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनो *प्यवितृप्तितः।
कष्टं सर्वे *पि सीदन्ति परमेकः मुनिः सुखी॥

धन का अर्थी धन न मिलने से दुःखी होते हैं। धनवान् तृष्णा के वश दुःखी रहते हैं, खेद या कष्ट प्रकट करते हैं आचार्य कहते हैं कि संसार में सभी जीव दुःखी हैं एक दिगम्बर निर्ग्रन्थ वेश धारी मुनि ही परम सुखी नजर आते हैं। कहा भी है।

एक बार एक राज्य में राजा बहुत ही प्रजावत्सल धर्मपरायण था। सारी प्रजा के प्रति समर्पित था। अचानक कर्म के उदय से राजा के लिए बीमारी उत्पन्न हो गई। राजा कमजोर होने लगा और दुःख से पीड़ित रहता था। इस कारण सारी प्रजा में असंतोष था मन्त्री भी परेशान था किसी प्रकार भी स्वस्थ लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था। मन्त्री ने एक शाधाक से निवेदन किया हमारे राजा के स्वास्थ्य लाभ हेतु कोई उपाय बताइये। शाधाक ने कहा-यदि आप किसी सर्व सुखी व्यक्ति की ड्रेस लाकर राजा को पहना दे तो राजा स्वस्थ हो सकता है। मन्त्री को सन्तोष हुआ हमारे राज्य में अनेक धनवान् और सुखी व्यक्ति है अभी लाकर दे देंगे।

मन्त्री एक-एक करके सारे नगर में क्या सारे देश में घूमकर खोज लेता है किन्तु कोई भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं मिला।

कोई तन दुखी, कोई मन दुखी, कोई धन दुखी दीखे।
इस जग में कोई भी, न सर्व सुखी दीखे॥

मन्त्री हार थककर महल की ओर जा रहा था तभी कुछ लोग पीले परिधान में हाथों में द्रव्य लिये जा रहे थे। मन्त्री ने पूछा-आप सभी कहाँ जा रहे हैं। तब लोगों ने कहा-हम सभी मुनिराज के दर्शन करने जा रहे हैं। मन्त्री ने पूछ लिया कि वह तो सुखी हैं कि नहीं। लोगों ने कहा-हाँ वह तो पूर्ण रूप से सुखी हैं। वह भी उनके साथ चल दिया।

मुनि महाराज से पूछा-आपको कोई दुःख तो नहीं है। महाराज ने कहा-नहीं। तब मन्त्री को सन्तोष हुआ कि कम से कम कोई तो सुखी व्यक्ति मिला फिर उसने महाराज से ड्रेस हेतु निवेदन किया तब महाराज ने कहा-हमारी ड्रेस आपके सामने हैं जो हमारा भेष है यही ड्रेस है यही एड्रेस है।

मन्त्री ने राजा से आकर कहा बड़ी विचित्र दशा है जिसके पास ड्रेस है तो सुखी नहीं है जो सुखी है तो ड्रेस नहीं है अब तो सुखी व्यक्ति के पास जाकर दर्शन करना ही श्रेष्ठ है। राजा मुनिराज का दर्शन करने जाता है और धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो जाता है। मन की चिन्ता मिटने पर और शुभ भोजन, वायु के प्राप्त होते ही तन, मन से स्वस्थ हो जाता है परम सुख को प्राप्त कर लेता है।

आकिन्चन्य धर्मधारी लौकिक सुख नहीं चाहता है पर पुण्योदय से उसे बाह्य वैभव समवरण की विभूति का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। तप के प्रभाव से मिट्टी भी सोना बन जाता है। शुभचन्द्राचार्य और भर्तृहरि दोनों भाई थे। पर शुभचन्द्राचार्य बाह्यभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर सात्त्व होकर तप करने लगे और भर्तृहरि मिथ्या तप करता हुआ रसायन सिद्धि में लग

गया। रसायन से सोना बनाने की प्रक्रिया में अपने जीवन के 12 वर्ष व्यर्थ गँवा दिये। मिलने पर शुभचन्द्राचार्य भर्तृहरि को संबोधित करते हैं भाई! राज्य में सोने की कमी थी क्या? जो इसमें समय बिताया आत्म कल्याण के लिए सम्पत्ति का मोह छोड़ो। तप के प्रभाव से इस प्रकार की सम्पत्ति तो घास-रूस के समान अपने आप प्राप्त हो जाती है। ऐसा कहकर शुभचन्द्राचार्य ने अपने पैर के नीचे की मिट्टी पहाड़ पर गेंक दी, पूरा पहाड़ सुवर्णमय हो गया स्वर्णगिरी बन गया। यह है आकिन्चन्य धर्म का प्रभाव। यह लौकिक सम्पत्ति तो तुच्छ है यदि मिल गई तो कोई आश्चर्य नहीं, आकिन्चन्य धर्म के प्रभाव से तो मोक्ष पद की प्राप्ति भी हो जाती है। जहाँ अनन्त अव्याबाधा सुख है। आत्मानुशासन में श्री गुणभद्राचार्य ने कहा भी है-

अकिन्चनो*हमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।

योगी गम्यन्तु तव प्रोक्तं, रहस्यं परमात्मनः॥

अर्थ-हे भव्य! तू “मेरा कुछ भी नहीं है” ऐसी भावना के साथ स्थित हो ऐसा होने पर तू तीन लोक का स्वामी हो जायेगा। यह तुझे परमात्मा का रहस्य बतला दिया है जो केवल योगियों के द्वारा प्राप्त करने योग्य था उनके ही अनुभव का विषय है।

इस प्रकार आकिन्चन्य को परमात्म पद का कारण बताया है। आकिन्चन्य क्या है? मन, वचन, काय को कषायों के रंग से अछूता रखना आकिन्चन्य है। क्षीण कषाय रूप 12 वाँ गुणस्थान होने पर उत्तम आकिन्चन्य धर्म की पूर्णता होती है तथा मिथ्यात्व का नाश होने के बाद ही आकिन्चन्य धर्म को प्राप्त करने की पात्रता इस जीव को आती है। ऐसा क्यों? इसके समाधान के लिए दृष्टान्त दिया जाता है-

जिस प्रकार वृक्ष के पत्तों को सींचने से पत्ते नहीं पनपते हैं

अपितु जड़ को नीचे सींचने से ही पनपते हैं। उसी प्रकार समस्त अन्तरंग बहिरंग परिग्रह मिथ्यात्वरूपी जड़ से पनपते हैं। यदि हम चाहते हैं कि पत्ते सूख जावें तो पत्तों को तोड़ने से कुछ नहीं होगा, नवीन पत्ते निकल आयेगे। यदि जड़ ही काट दी गई तो फिर समय पाकर पत्ते अपने आप सूख जायेंगे। उसी प्रकार मिथ्यात्व ब्रह्मोहम्बर रूपी जड़ के कट जाने पर बाकी के परिग्रह समय पाकर स्वतः टूटने लगेंगे। क्योंकि आचार्यों ने कहा है- “सम्यग्दृष्टिः भवति नियतं ज्ञान वैराग्यशक्ति” सम्यग्दृष्टि का पुरुषार्थ सतत् ज्ञान वैराग्य को बढ़ाने के प्रति होता है तो आकिन्चन्य धर्म की प्राप्ति के लिए प्रथमतः 25 दोषों से रहित निर्मल सम्यग्दर्शन का आचरण होना चाहिए। सम्यग्दर्शन को मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी कहा गया है। तदन्तर क्रमशः गुणस्थानों की वृत्ति करता हुआ यह जीव आकिन्चन्य धर्म की ओर बढ़ता जाता है। सकल परमात्मा बन जाता है यह है उत्तम आकिन्चन्य धर्म का मधुर ग्ल। सदा के लिए जन्म जरा मरण से छूटकर स्थाई सुख प्राप्ति का होना आकिन्चन्य धर्म का ग्ल है। ऐसे उत्तम आकिन्चन्य धर्म को अपना कर हम आत्मसंस्कार में लगे तभी इस पर्यूषण पर्व आने की सार्थकता है। आप बाहर से शरीर को संस्कारित करने में पूरा जीवन खपा देते हो पर आत्म संस्कार की ओर ध्यान कभी नहीं जाता। इस पर्यूषण पर्व के अवसर पर हम उत्तम आकिन्चन्य धर्मरूपी आभूषण को पहने, यह ऐसा अपूर्व आभूषण है जिसकी कान्ति चमक कभी गीकी नहीं पड़ती है। अप्रतिम सौन्दर्य को प्रदान करने वाले इस आकिन्चन्य धर्म की प्राप्ति के लिए अभी हम सब उसकी अर्चना पूजा करें।

अन्तर को छोड़िके निरम्बर मुनीश हुए, संवर को धारिके दिगम्बर कहाए हैं होय परम हंस कर्म वंश को मिटाय रहे आत्मीक धर्म में निशंक होय धाये हैं। चार बीस ग्रन्थ त्याग लगे ज्ञान मंथन में, वे ही निर्ग्रन्थ संत ग्रन्थन में गाये

आस-पास छेद जे कर्म शैल भेद जे आकिंचन धारी मुनि सभी को सुहाये हैं॥

सोलह ताप से तपनें पर स्वर्ण शु) होता है।
मोह के कारण मोक्ष मार्ग अवरु) होता है॥
सम्यक्ज्ञानी जीव ही प्यारे बन्धु स्वयं बु) होता है।
कषायों का शमन होने पर आत्म विशु) होता है॥

अभाव गम का नहीं मनमोहक बहारों का है।
अभाव अंधेरे का नहीं उजाला चाँद सितारों का है॥
सुख सागर में रमण कर भी चेतना में जलन क्यों।
यह प्रश्न किसी एक का नहीं हजारों-2 का है॥

सम्यक्त्व हीन को कभी सम्यक् चारित्र नहीं होता।
आकाश अमूर्त और अनन्त है उसका अन्त नहीं होता॥

आत्मा नित्य निरंजन वीतरागी आकिंचन्य है।
आत्मा स्वाधीन है उसका कोई मित्र नहीं होता॥

ॐ ऋं श्री उत्तम आकिंचन्य धर्मान्नाय नमः

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

इंसान के जीवन की उत्तम दिशा है।	ब्रह्मचर्य
आत्माचरण का नाम है।	ब्रह्मचर्य
शील की पूर्णता का नाम है।	ब्रह्मचर्य
आत्मा में रमण है।	ब्रह्मचर्य
मैथुन त्याग का नाम है।	ब्रह्मचर्य
आत्मा स्वभाव का नाम है।	ब्रह्मचर्य
काम पर विजय है।	ब्रह्मचर्य
अखण्ड प्रतिज्ञा है।	ब्रह्मचर्य

शु)ोपयोग का न्व है।	ब्रह्मचर्य
तृतीय नेत्र है।	ब्रह्मचर्य
आत्मा रमण है।	ब्रह्मचर्य
संसार में मोक्ष का नाम है।	ब्रह्मचर्य
सम्पूर्ण वीतरागता है।	ब्रह्मचर्य
अन्तिम मंजिल है।	ब्रह्मचर्य
सर्वश्रेष्ठ गुरुत्व है।	ब्रह्मचर्य
अनेकता में एकता है।	ब्रह्मचर्य
अक्षयनिधि है।	ब्रह्मचर्य
अनन्त सुख में रमण है।	ब्रह्मचर्य
अनन्तदर्शन है।	ब्रह्मचर्य
अनन्त सुख का निधान है।	ब्रह्मचर्य
परमात्मा का नाम है।	ब्रह्मचर्य
अनन्त शक्ति का केन्द्र है।	ब्रह्मचर्य

“ब्रह्मणि आत्मनि साचरित इति ब्रह्मचर्य” ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा है उस आत्मा में लीन हो जाना, आत्मा में रमण करना या प्रवृत्ति करना ब्रह्मचर्य है।

आत्मा ब्रह्म विविद्र बोध निलयो यत् तत्र चर्य परं।
स्वांगासंग विवजितैक मनसस् तद् ब्रह्मचर्य मुनेः॥

ब्रह्म का अर्थ है निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा, इस आत्मा में लीन होने का नाम ब्रह्मचर्य है। जिस मुनि का मन अपने तन से निर्ममत्व हो गया उसी के वास्तविक ब्रह्मचर्य होता है।

दृष्टिकोण की [REDACTED] ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म+चर्य अर्थात् ब्रह्म = आत्मा में, चर्य = घूमना, भ्रमण करना। अर्थात् आत्मा की चर्या का नाम ब्रह्मचर्य है। अब्रह्म का त्याग ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य दस धर्मों में अन्तिम धर्म है। जब व्यक्ति क्षमा से क्रोध को जीतकर, मृदुता से मान को खण्डित करके सरलता से कुटिलता का अन्त करे, शौच से लोभ की इति करके सत्य का पालन तप धारण करके संसार का त्याग कर एक मात्र परमात्मा में लीन होने के लिए अकेला परिग्रह से रहित अकिंचन हो जाता है तब वह ब्रह्मचर्य को धारण करके अपनी आत्मा, में रमण करता हुआ अनन्तपद मोक्ष को पा जाता है। अनगार धर्माभूत में कहा है-
या ब्रह्मणि स्वात्मनि शु) बु), चर्या पर द्रव्य मुच प्रवृत्तिः।
तद् ब्रह्मचर्यं व्रत सार्व भौमं ये, पाति ते यान्ति परं प्रमोदम्॥

पर द्रव्यों से रहित शु) बु) स्वात्मा में चर्या अर्थात् लीनता है उसे ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। व्रतों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत का जो पालन करते हैं वह अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचर्य साधना सबसे बड़ी व सबसे कठिन साधना है। आज के भौतिकवादी वासनामय वातावरण में तो ब्रह्मचर्य की साधना तलवार की धार पर चलने के समान है। अच्छे-अच्छे तपस्वियों की तपस्या इसी कामवासना ने भंग की है। इसे जीतना बहुत कठिन कार्य है।

केवल स्त्री मात्र का त्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य नहीं है, सही मायने में ब्रह्मचर्य का अर्थ है उत्कृष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए कदम बढ़ाना जब तक हमारी दृष्टि काम वासना एवं भोगों में लगी रहेगी, तब तक हम उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं कर सकते। शांति, शक्ति और आनन्द देने वाला ब्रह्मचर्य व्रत ही है। आज

दुनियाँ में सर्वाधिक अपराध एवं मौतें वासना के ग्लस्वरूप होती हैं। कभी मोहित होकर कभी पश्चाताप से। एक घटना है-

एक बार एक व्यक्ति संसार से विरक्त हुआ और उसने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और पीताम्बर वरु धारण कर कठोर तपश्चरण करना लगा उसकी कठोर साधना के कारण कुछ ही दिनों में प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया और दूर-दूर से लोग दर्शन करने आशीष प्राप्त करने हेतु आने लगे।

एक बार एक सुन्दर स्त्री साधुजी दर्शन हेतु आई उसने भक्ति भाव के साथ भक्ति पूजा की। स्त्री को देखकर साधु के मन में वासना जागृत हो गई वह स्त्री की ओर मोहित होकर उसकी ओर देखने लगा स्त्री कुछ देर बाद अपने घर की ओर चल गई। बाद में साधु को बहुत पश्चाताप हुआ लोग कहते हैं कि इंसान पश्चाताप के समय अपना होश खो बैठता है। उसने विचार किया कि न ये आँखे होती न मोह जागता न बजे बाँस न बजे बाँसुरी और चिमटा उठाकर अपनी दोनों आँख नोड़ डाली। कभी समय व्यतीत होने के बाद नगर में दिगम्बर मुनि का आगमन हुआ उसकी धर्म देशना सुनने के लिए लोग आने लगे। वह साधु भी मुनिराज के दर्शन हेतु आये तब मुनिराज ने पूछ लिया बाबजी आप जन्मान्धा है या किसी कारणवश आँखे चली गई तब साधु जी ने सारी घटना सुना दी।

घटना सुनकर मुनिराज ने कहा-अपराधा किसी का दण्ड किसी ओर को, क्या यह उचित है? तब साधु ने पूछा कि मेरी समझ में नहीं आया कि आप क्या कह रहे हैं। तब महाराज ने कहा-आँख तो मात्र चश्मा की भाँति है वह देखने का काम करती है किन्तु अच्छे बुरे का विचार तो मन का है अपराधा मन का था आपने आँखों को दण्ड दे दिया यह तो ठीक नहीं है तब साधु

को अपनी गलती का भान हुआ और फिर मन को जीतने का प्रयास किया।

इस घटना से यह बात सिद्ध होती है ब्रह्मचर्य ही क्या प्रत्येक कार्य में मन को वश में करने की आवश्यकता है।

ब्रह्मचर्य व्रत को महाव्रत और अणुव्रत द्वस्वदार संतोषत्रय के भेद से 2 प्रकार का कहा है स्वदार संतोष में मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लक्ष्मण का विशेष उल्लेख है। दृष्टान्त आता है कि वनवास काल के दौरान जब राम लक्ष्मण सीता जंगल में थे तभी एक मायावी स्वर्ण मृग से आकर्षित होकर सीता जी ने राम जी से कहा मुझे स्वर्ण मृग चाहिये। रामजी ने सीता जी की सुरक्षा का दायित्व लक्ष्मण जी पर छोड़ मृग की खोज में चले गये। लेकिन जब बहुत देर तक वापिस नहीं आये तब सीताजी को चिन्ता हुई और उन्होंने लक्ष्मण जी से राम जी को खोज लाने को कहा। लक्ष्मण जी भाभीजी सीता का आदेश टाल नहीं पाये और कुटिया के बाहर लक्ष्मण रेखा खींचकर सीता जी को उससे बाहर न निकलने को कहकर जंगल में चले गये तभी दुष्ट रावण सात्रा के भेष में भिक्षा मांगने आ गया। सीताजी ने जैसे ही भिक्षा देने के लिए लक्ष्मण रेखा पार की रावण उन्हें हरण करके ले गया। वापिस लौटने पर राम लक्ष्मण व्याकुल होकर सीता को खोजते हैं आगे बढ़े एक स्थान पर सीताजी की बिन्दिया पड़ी मिली तो राम ने लक्ष्मण से पूछा क्या बिन्दिया सीता की है? लक्ष्मण चुप रहे। इसी तरह राम ने सीता जी के हार, बाजूबंद, करतानी, चूड़ी, अंगूठी आदि आभूषणों को देखकर पूछा तो भी लक्ष्मण चुप रहे। अन्त में पैर की पायल दिखने पर लक्ष्मण जी तुरन्त पहचान गये और चौंककर कहा यह सीता माताजी की ही है। रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से पूछा अभी तक तो तुमने एक भी आभूषण को नहीं

पहचाना इसको देखकर चौंक गये। तब लक्ष्मण ने कहा-भैया! माता के चरणों में ही दृष्टि होती है इसलिए मैं भी सीता भाभी को माँ दृष्टि से देखता था और चरणों में पायल पर दृष्टि पड़ने से उसे ही पहचानता हूँ। लक्ष्मण ने अपनी भाभी सीताजी को सदा ही माँ की तरह श्रद्धा सहित आदर किया और उनके चरणों की वन्दना की। देवर भाभी का ऐसा रिश्ता आज कहीं देखने को नहीं मिलता है। अतः दृष्टि ही ऐसी है जो कि बहुत अच्छी और बहुत बुरी होती है। अतः दृष्टिकोण की पवित्रता का नाम ही ब्रह्मचर्य है।

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पेक्खये रूवं।
काम कहाइणिवित्तो, णवविह बंभं हवे तस्स॥

जो मुनि, स्त्रियों की संगति से बचता है, उनके रूप को भी नहीं निहारता है, काम भोग की कथा आदि नहीं करता है, उस मुनि के 9 प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है।

ब्रह्म अर्थात् शुद्ध-बुद्ध आनन्दमय परमात्मा में लीन होने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। परमानन्दमय आत्मा के रस का आस्वादन करना ही ब्रह्मचर्य है। आत्मा को भूल कर जिन वस्तुओं में यह जीव लीन होता है, उसमें 'स्त्री' प्रधान है। अतः स्त्री मात्र का चाहे वह देवांगना ही क्यों न हो या मानुषी हो अथवा पशु योनी हो, या मूर्ति हो संसर्ग को छोड़ता है, उनके बीच उठता बैठता नहीं है, उनके जंघा, स्तन, मुख, नयन आदि मनोहर अंगों को देखता नहीं है तथा उनकी कथा नहीं करता, उसी के मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना के भेद से 9 प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है।

जिन शासन में शील के अठारह भेद कहे हैं, जो इस प्रकार हैं-स्त्री दो प्रकार की होती है-अचेतन और चेतन। अचेतन स्त्री के 3 प्रकार हैं-लकड़ी की, पत्थर की और रंग वगैरह की बनाई गई चित्रम की। इन तीन भेदों को मन-वचन-काय और

कृत-कारित-अनुमोदना इन 6 से गुणा करने पर 18 भेद होते हैं, उनको पाँच इन्द्रियों से गुणा करने पर 90 भेद होते हैं। इनको द्रव्य और भाव से गुणा करने पर 180 भेद होते हैं। उनको क्रोध-मान-माया और लोभ से गुणा करने पर 720 भेद होते हैं। चेतन स्त्री के भी 3 प्रकार हैं-देवांगना, मानुषी और तिर्यची। इनको कृत-कारित-अनुमोदना से गुणा करने पर 9 भेद होते हैं। इन्हें मन-वचन-काय से गुणा करने पर 27 भेद होते हैं। इन्हें 5 इन्द्रियों से गुणा करने पर 135 भेद होते हैं। इन्हें द्रव्य और भाव से गुणा करने पर 270 भेद होते हैं। इनको आहार-भय-मैथुन-परिग्रह इन चार संज्ञाओं से गुणा करने पर 1080 भेद होते हैं। इनको अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण-संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन सोलह कषायों से गुणा करने पर 17280 भेद होते हैं। इनको अचेतन स्त्री के 720 भेद जोड़ने पर 18000 भेद होते हैं। ये सब विकार के भेद हैं। इन विकारों को त्यागने से शील के 18000 भेद होते हैं।

इन भेदों को दूसरे प्रकार से भी गिनाया गया है। मन-वचन-काय योग को शुभ मन, शुभ वचन और शुभ काय से गुणा करने पर 9 भेद होते हैं। उन्हें 5 इन्द्रियों से गुणा करने पर 180 भेद होते हैं। उन्हें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, दो इन्द्रिय, त्र्य इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा रूप 10 से गुणा करने पर 1800 भेद होते हैं और उन्हें उत्तम क्षमा आदि इस धर्मों से गुणा करने पर 18000 भेद होते हैं।

आत्मलीनता रूप उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म तो निर्ग्रन्थ वीतराग दिगम्बर मुनि के ही संभव है पर व्यवहार नय से स्थूलरूप से अब्रह्म के त्याग से श्रावक के जीवन में भी ब्रह्मचर्य संभव है।

पर्यूषण पर्व की पूजा में पूजनकार व्यवहार और निश्चय दोनों प्रकार के ब्रह्मचर्य को जीवन में उपयोगिता दिखाते हुए लिखते हैं-

शीलबाड नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लख्यो।
करि दोनों अभिलाख, करहुँ फल नर भव सदा॥

अर्थ-“हमें अपने जीवन में शील की रक्षा नवबाड़ पूर्वक करनी चाहिए तथा अन्तर में अपनी आत्मा की रक्षा के लिए भी बाड़ लगावें पर 9 बाड़ों से शील की रक्षा करनी होगी। जितना अधिक मूल्यवान् माल द्रवस्तुक्र होता है उसकी रक्षा-व्यवस्था उतनी ही मजबूती से करनी पड़ती है तथा एक के स्थान पर अनेक बाड़ें लगाई जाती हैं।

हम रत्नों को कही जंगल में नहीं रखते। नगर के बीच में मजबूत मकान के भीतर बीच वाले कमरे में, लोहे की तिजोरी में, तीन-तीन ताले लगाकर रखते हैं। शील भी एक रत्न है। उसकी भी रक्षा हमें 9-9 बाड़ों से करनी चाहिए। हम काया से कुशील का सेवन नहीं करें, कुशील पोषक वचन भी न बोलें, मन में भी कुशील सेवन के विचार न उठने दें। ऐसा न तो हम स्वयं करें, न दूसरों को करावें और न इस प्रकार के कार्यों का अनुमोदन करें।

व्यवहार दृष्टि से मैथुन भाव को ही प्रधानतः अब्रह्म संज्ञा दी है क्योंकि उससे इस जीव को ज्यादा आसक्ति होती है। मैथुन त्याग के बाद जीवन में सात्विक भाव द्रविविचारोंक्र का प्रवेश होता है। पहले ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्यार्थी आश्रम में विद्याध्ययन करते थे, सादा भोजन करते थे उससे उसकी बुद्धि प्रखर होती थी, विद्या जल्दी आती थी। बहुत से बालक बालिकायें मुनि एवं आर्थिका माताजी के पास विद्या पढ़ते थे। यहाँ बालक विजयकुमार

और बालिका विजया का दृष्टान्त आता है। विजयकुमार श्रेष्ठी पुत्र था जो मुनिराज के पास विद्याध्ययन करता था। अध्ययन कार्य पूर्ण हो जाने पर वह घर लौटने लगा तो आत्मविशुद्धि के लिए उसने मुनिराज से यह व्रत लिया कि “शुक्लपक्ष में आजीवन ब्रह्मचर्य से रहूँगा।” इसी प्रकार अन्य श्रेष्ठी पुत्र भी आर्यिका माताजी के पास विद्याध्ययन करती थी घर जाने के समय उसने भी आर्यिका माताजी से व्रत लिया कि “मैं कृष्णपक्ष में सदा ब्रह्मचर्यपूर्वक रहूँगी।” उसके व्रतों की जानकारी परिवार में किसी को नहीं थी। संयोगवश उन दोनों का परस्पर विवाह हो जाता है। विवाह के उपरान्त विजयकुमार ने विजया से कहा-प्रिये! अभी शुक्लपक्ष है अतः मैं तुम्हारे साथ भोग नहीं कर सकता हूँ। शुक्लपक्ष में मेरा ब्रह्मचर्य से रहने का नियम है तब विजया ने कहा-“प्राणनाथ आपका व्रत पूर्ण होते ही मेरा व्रत शुरू हो जाएगा” मेरा भी कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य से रहने का नियम है। तब दोनों ही बड़े प्रसन्न होते हैं और एक साथ रहते हुए अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। इसी प्रकार 12 वर्ष घर में बीत गये उन्होंने व्रत का निरतिचार पालन किया। एक जन्मान्ध व्यक्ति था, उसको मुनिराज ने कहा था कि गृहस्थी में रहकर जो अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हो उसके दर्शन करने से तुम्हारे नेत्र अच्छे हो जायेंगे। वह घर-घर घूमता हुआ विजयकुमार के गृहआंगन में पहुँचा और द्वार पर बैठी वृद्धा माँ को कहा कि तुम्हारी बहू और बेटे कहाँ है, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ यदि वे ब्रह्मचारी होंगे तो मेरे नेत्र उनके दर्शन से ठीक हो जायेंगे अतः हे मात! दयाकर अपने पुत्र और पुत्रवधू को बुला दो। वे दोनों इन बातों को सुन रहे थे आकर सामने खड़े हो गये। उनके सामने आते ही उस जन्मान्ध व्यक्ति की दृष्टि निर्मल हो गई। दोनों आँखों से दीखने

लगा। तदन्तर उन दोनों ने अपने गृहीत व्रतों को घर में माता-पिता को भी बताया। सब लोग इस दृश्य को देखकर जय-जयकार करने लगे और उनके ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करने लगे। ब्रह्मचर्य की महिमा अपूर्व है महान् है। मुक्ति का कारण शीलव्रत ही है। इस प्रकार निर्मल ब्रह्मचर्य का घर में पालन करने वाला अवश्य ही भविष्य में दिगम्बर वेश धारण कर तपश्चरण से कर्मक्षय कर शीघ्र मोक्ष को भी प्राप्त करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। कहा भी है-

“एकमेव व्रतं श्लाघ्यं, ब्रह्मचर्यं जगत्त्रये।”

शीलव्रतधारी अपने गुण सौरभ से गगन मण्डल को व्याप्त करता हुआ पृथ्वी तल पर निर्मल यश को प्राप्त करता हुआ अजर अमर हो जाता है। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने तत्काल व्याही देवांगनाओं के समान सुन्दर पत्नीयों को छोड़कर प्रातःकाल ही जिन दीक्षा को धारण कर लिया। सेठ सुदर्शन के शीलव्रत के प्रभाव से शूली का सिंहासन हो गया। सोमासती के शील के प्रभाव से नाग का हार हो गया। सीता सती के शील के प्रभाव से अग्निकुण्ड सरोवर हो गया। नीली देवी चन्दना, अनन्तमती, मनोरमा, द्रौपदी, राजुल आदि का जीवन आज भी हम श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं। क्योंकि विपत्ति में भी उन्होंने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, निर्मल शीलव्रत में दृढ़ रहीं, अतः देवों ने भी आकर उनकी रक्षा की एवं स्तुति की। मैना सुन्दरी रयणमन्जूषा आदि अनेक सती शीलव्रती नारियों ने अपने निर्दोष शीलव्रत से इस भारतभूमि को अलंकृत और पवित्र किया है। उसी आदर्श पर चलकर हम भी अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करें। इसके लिए ही इस पर्यूषण पर्व का शुभागमन हुआ। शीलव्रत को सभी धर्मों में प्रशंसनीय

माना गया है। शील ही धर्म का आधार है जीवन का सार है।

सुकरात से किसी व्यक्ति ने पूछा कि मनुष्य को स्त्री संभोग कितनी बार करना चाहिए। तब सुकरात ने कहा जीवन में एक बार। यदि यह संभव न हो तो वर्ष में एक बार। यदि यह भी संभव न हो सके तो माह में एक बार यह भी संभव न हो सके तो निरकून सिर पर बाँध लो और जो चाहे जैसा करो। जो गृहस्थ ब्रह्मचर्य का एक देश पालन करते हैं, उनकी संतान सदाचारी, विनयवान एवं बलवान होती है। संसार के सभी मतों में ब्रह्मचर्य की प्रशंसा की गई है।

शीलव्रत शिवराह है, शीलगुण कामदाह हर्ता है, शील मोक्षदायक है, शील भवपारक है, शील भवपार के लिए नौका है, शील कामतम नाशक रवि है, शील सर्वधर्म में सरदार है शील पापतरु खण्डन हेतु असि है, शीलव्रत 'कामकपि बन्धन' हेतु शृङ्खला है, शील मत्त-मदन-गज-विध्वंसक केहरि है, शीलव्रत मंगलकारक है, शीलव्रत लोकोत्तम है, शीलव्रत गुणसमुद्र वर्त्ताक चन्द्र है।

ब्रह्मचर्य से शरीर में बल, तेज, उत्साह एवं ओज की वृद्धि होती है। शीत, उष्ण, पीड़ा आदि सहन करने की शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करने पर भी थकावट कम आती है, प्राणवायु को रोकने की शक्ति आती है, शरीर में रूढ़ि एवं चेतनता आती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम होती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करने की क्षमता प्रचुर मात्र में रहती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती है, वृद्धि तीव्र होती है, मन बलवान होता है, कायरता नहीं

आती है, कर्तव्य पालन करने में अनुत्साह नहीं होता है, बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी त्रैर्य नहीं टूटता है, कठिनाइयों एवं विध्वन बाधाओं का वीरतापूर्वक सामना करने की क्षमता आती है, धर्म पर दृढ़ आस्था होती है, क्षमा का भाव बढ़ता है इत्यादि। अतः ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन का चरम ग्ल है।

ब्रह्मचर्य ही ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों का परम साधन है। ज्ञानोपार्जन के लिए भी ब्रह्मचर्य व्रत की बहुत बड़ी आवश्यकता है। ब्रह्मचारी की महीना अचिन्त्य है।

विद्या मन्त्रस्य सि)यन्ति, किंकरन्ति अमराण्यपि।

क्रूराः शाम्यन्ति नाम्नापि, निर्मलं ब्रह्मचारिणः॥

ब्रह्मचारी के बिना जीवन में कल्याण नहीं हो सकता। यदि आपको आदर्श बनना है तो अपने आपको मजबूत बनाकर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना होगा। अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले दिगम्बर साधु ही होते हैं। दिगम्बरता ही ब्रह्मचर्य की सबसे बड़ी कसौटी है। निर्मलता है। कहा भी है-

शुचिर्भूमि गतं तोयं, शुचिर नारी पतिव्रतः।

शुचि धर्म परो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥

छोड़ के अब्रह्म ब्रह्मचर्य में लीन रहो ब्रह्मदेव का तेरे अन्तर में वास है निर्जन वन गुहा और मन्दिर क्यों खोज रहे यत्र-तत्र बाहर न मिलने की आस है परं ब्रह्म पाये हैं आगे भी पायेंगे निज के परमात्म का जिन को विश्वास है। ब्रह्मचर्य उत्तम है उत्तम परमात्मा

उत्तम है सन्त जिनके ब्रह्मचर्य पास है॥

तूगान आने पर पर्वत हिल नहीं सकता॥
पत्थर पर कमल कभी खिल नहीं सकता॥
धर्म महान् संजीवनी है प्यारे भाई॥
ब्रह्मचर्य के बगैर मोक्ष मिल नहीं सकता॥

काम क्रोध मोह को जीतने वाला संत होता है।
संयम और तप की साधना ले कर्मों का अन्त होता है॥
धर्म की दस सीढ़ियाँ संसार से ऊपर उठने के लिए हैं।
ब्रह्मचर्य को धारण करने वाला अर्हत होता है॥

तन मन में विकार होने से उपादान खो जाता है।
मोह तिमिर छा जाए तो सम्यक्ज्ञान खो जाता है॥
महिमा अचिन्त्य है ब्रह्मचर्य की, कौन उसे कह सकता है।
ब्रह्मचर्य पालन जो करता वह परम ब्रह्म हो जाता है॥

ॐ ऋषिं श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मान्नाय नमः

क्षमावाणी पर्व

पर्यूषण पर्व का प्रारम्भ क्षमा से होता है तथा अन्त भी क्षमावाणी से होता है इसका कारण यह है कि क्रोध को तजने के उपरान्त ही मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिन्चन्य एवं ब्रह्मचर्य की तेजस्विता अर्जित होती है। क्रोधी व्यक्ति न मृदु होता है न सरल। क्रोध उसे विवेक हीन बनाये रखता है, सत्य शौचादि से तो उसका दूर का भी रिश्ता नहीं रहता है।

अतः दशलक्षण धर्म में सर्वप्रथम क्रोध के सर्वथा अभाव को ही प्राथमिकता दी गई है। क्रोध के प्रति भी हमारे निर्मल परिणाम हो गये, प्रतिशोध बैर विरोध की भावना समाप्त हो गई उसी क्षण ऐसा समझें कि हमारे कल्याण का मार्ग उद्घाटित हो गया। कहा भी है-

नास्ति क्षमा समो बन्धुः, नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
क्रोधो मूलमनर्थानां, तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्॥

इस लोक और परलोक दोनों को सम्मानप्रद बनाने वाली एक मात्र भावना क्षमा भाव ही है। विश्वशान्ति और “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना का भवन, क्षमा की ही नींव पर स्थापित है। “जीओ और जीने दो” की भावना का मूल तत्व क्षमा में ही गर्भित है। क्षमा का ज्योतिपुंज, आज विध्वंसक शस्त्रों की होड़ और यु) के कगार पर खड़े विश्व को, शान्ति का मार्ग दिखला रहा है। यदि हम वास्तव में जिनशासन के अनुयायी हैं तो हमारे हृदय में क्षमा की धारा प्रभावित होनी चाहिए। तभी हमारा आचरण विश्व वन्द्य बन सकता है।

इस क्षमावाणी पर्व के सुअवसर पर मात्र वाचनिक क्षमा नहीं, हार्दिक क्षमा की आवश्यकता है। मन, वचन, काय में एकरूपता-समता भाव लाकर हम क्षमा को जीवन में लायें। संसार के समस्त अनादि कर्म बन्धन, मात्र क्षमा भाव से, निश्चेष्ट होकर, जर्जरित हो जाते हैं। अतः हम अनादिकालीन कर्म पाश को समूल नष्ट करने हेतु, अनन्त चतुष्टय को प्रकटाने हेतु क्षमा धारण करें दशलक्षण धर्म पर्व मनाना भी तभी समीचीन होगा और सार्थक होगा। कहा भी है-

उत्तम क्षमा गहो रे भाई इह भव जश पर भव सुखदाई।

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस दशधर्मों की आराधना के बाद यह क्षमावाणी महापर्व आता है उनकी आराधना आचार्य उमास्वामी ने मुनिधर्म के प्रसंग में की है। दशधर्मों की आराधना का प्रकलन जिस क्षमावाणी में प्ररुटित होता है।

वर्ष में तीन बार क्षमावाणी आती है उसका आने का भी कारण है यह है कि अप्रत्याख्यान कषाय 6 माह से अधिक नहीं रहती। यदि अधिक रहे तो समझना चाहिए कि वह अनन्तानुबन्धी है। अनन्तानुबन्धी कषाय है वह अनन्त संसार की कारण है। अतः यदि क्षमावाणी 6 माह के भीतर ही हो जावे और उसके निमित्त से हम 6 माह के भीतर ही क्रोधमानादि कषायभावों को धो डालें तो बहुत अच्छा रहे। वैरभाव धारण ही नहीं करना चाहिए। यदि कदाचित् हो भी जावे तो उसे तत्काल मिटा देना चाहिए। इसके बाद भी यदि रह जाये तो फिर क्षमावाणी के दिन तो मन सफ हो ही जाना चाहिए।

इसमें एक बात और भी विचारणीय है। वह यह है कि क्षमावाणी को हमने मनुष्यों तक ही सीमित कर रखा है, जबकि आचार्यों ने इसे जीवमात्र तक विस्तार दिया है।

वे सब जैनियों या सर्व मनुष्यों मात्र से क्षमा माँगने या क्षमा की बात न करके सब जीवों को क्षमा करने और सब जीवों से क्षमा माँगने की बात करते हैं। इसी प्रकार वे मात्र जैनियों या मनुष्यों से मित्रता नहीं चाहते, किन्तु प्राणीमात्र से मित्रता की कामना करते हैं। उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं, विशाल है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब कोई जीव हमसे क्षमा

माँगे ही नहीं तो हम उसे कैसे क्षमा करें? तथा हम उससे क्या क्षमा माँगे, जो हमारी बात समझ ही नहीं सकता। हमें क्या क्षमा करेगा, कैसे क्षमा करेगा? इस प्रकार एकान्तवादी जीवों से क्षमा माँगना और उन्हें क्षमा करना कैसे संभव है?

क्षमाभावना या क्षमाकरना दो प्राणियों की सम्मिलित प्रक्रिया नहीं है यह व्यक्तिगत चीज है स्वाधीन क्रिया है। क्षमावाणी एक धार्मिक परिणति है, आध्यात्मिक क्रिया है। यदि हम क्षमाभाव धारण करना चाहते हैं, तो उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि जब कोई हमसे क्षमायाचना करें तब ही हम क्षमा कर सकें अर्थात् क्षमा धारण कर सकें। अपराधी द्वारा क्षमायाचना नहीं किये जाने पर भी उसे क्षमा किया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो फिर क्षमा धारण करना भी पराधीन हो जाता। यदि किसी ने हमसे क्षमायाचना नहीं की, तो उसने स्वयं की मान कषाय का त्याग नहीं किया और यदि हमने उसके द्वारा क्षमायाचना किए बिना ही क्षमा कर दिया तो हमने क्रोधभाव का त्यागकर उसका नहीं, अपना ही भला किया है।

इसी प्रकार हमारे द्वारा क्षमायाचना करने पर भी यदि कोई क्षमा नहीं करता है, तो क्रोध का त्याग नहीं करने से उसका ही बुरा होगा। हमने तो क्षमायाचना द्वारा मान का त्यागकर, अपने में मार्दव धर्म प्रकट कर ही लिया। उसके द्वारा क्षमा नहीं करने से, क्षमा माँगने से होने वाले लाभ से हम वंचित नहीं रह सकते।

यही कारण है कि आचार्यों ने अन्य जीवों द्वारा क्षमायाचना की प्रतीक्षा किए बिना ही सब जीवों को अपनी ओर से क्षमा करके तथा 'कोई क्षमा करेगा या नहीं'—इस विकल्प के बिना ही

सबसे क्षमायाचना करके अपने अन्तःस्थल में उत्तमक्षमा मार्दवादि धर्मों को धारण कर लिया।

कोई जीव हमसे क्षमा माँगे, चाहे नहीं(हमें क्षमा करें, चाहे नहीं(हम तो अपनी ओर से सबको क्षमा करते हैं और सबसे क्षमा माँगते हैं-इस प्रकार हम तो अब किसी के शत्रु नहीं रहे और न हमारी दृष्टि में कोई हमारा शत्रु रहा है। जगत् हमें शत्रु मानो तो मानो, जानो तो जानो(हमें इससे क्या? और हमारा दूसरे की मान्यता पर अधिकार भी क्या है?

हम तो अपनी मान्यता सुधार कर अपने में जाते हैं, जगत् की जगत् जाने-ऐसी वीतराग परिणति का नाम ही सच्चे अर्थों में क्षमावाणी है।

अथवा यह क्षमावाणी पर्व हमें आत्म आलोचना वा किये गये अपराधों का शोधन के लिए अवसर प्रदान करता है। भविष्य में हमसे ऐसे अपराध न हों इसके लिये यह मुमुक्षु आलोचना, निन्दा गर्हा पूर्वक आत्मशुद्धि को प्राप्त कर इस क्षमावाणी पर्व को सार्थक करें। किसी व्यक्ति ने प्रमादवश, अज्ञानवश एवं कषायवश हमारी निन्दा, अर्थहानि, अवज्ञा कर जो हमें दुःखी किया जाता है तो उसी प्राणी के समस्त अपराधों को क्षमाकर, चित्त में हुई कलुषता को स्थाई रूप दें तभी समझना कि हमने क्षमावाणी पर्व मनाया, अन्यथा नहीं।

यथार्थ में, संसार में सच्चा वीर वही जीव है जो दूसरे के द्वारा किये गये उपकार रूप अपराधों को निर्मल हृदय में क्षमा कर दे, उसके साथ बैर विरोध भाव न रखें। उसका नल तो वह स्वयं पायेगा इष्टोपदेश में कहा है

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।

त्र्यंगुलं पातयन् पद्भ्यां, जनाय परिकुप्यति॥

अपने प्रति उपकार करने वालों पर क्रोध करना व्यर्थ है। क्योंकि अपने पैर पर त्र्यंगुल द्वयंक्रह पटकने पर वह गिराने वाले को गिरा दे तो उस पर रोष करना व्यर्थ है। साम्य भाव की महिमा अनुपम है। “क्षमा वीरस्य भूषण” ऐसा कहा भी है।

क्षमावाणी-क्षमा याचना आत्म परिणामों की विशुद्धि का सूचक है जो मात्र क्रोध के त्याग का ही नहीं अपितु मान माया आदि के अभाव का भी बोधक है। जो अहंकारी है वह किसी से क्षमा याचना नहीं करता है। इसी प्रकार कपटी, लोभी भी क्षमा याचना नहीं करता है। यहाँ पर कोई शंका करें कि क्षमा याचना में मार्दव गुण कारण है तो इसे मार्दव वाणी क्यों नहीं कहते? अथवा सरलता, सन्तोष भाव धारी के क्षमा भाव पाया जाता है। अतः क्षमावाणी शब्द के स्थान पर आर्जव वाणी, शौच वाणी शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं किया गया?

इसका समाधान यह है कि जैसे अनेक भाईयों या भागीदारों का बराबर भाग रहने पर भी नर्म या कम्पनी का नाम प्रथम भाई के नाम पर रख दिया जाता है यहाँ एक भाई का नाम रहने पर भी सबके स्वामित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् क्षमा का नाम रहने पर भी क्षमावाणी में दशों त्रार्म समाहित हो जाते हैं।

ikfroz;al.h.kka :ia]fiduka :idaLojA
fo|k:iadq:ik.kka] {kek:iarfiloke-AA5A
vfkZ&fl=;ksadk :i ifrozkiugS] dks,yksadk :i LojgS]
dq:iksadk
:i fo|kgS] rfilo;ksadk :i {kekgsA

